ईर्ष्या की आग

आचार्य श्री नानेश

सकलन–सपादन
मुनि ज्ञान

❀ प्रकाशक
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, बीकानेर (राज)

❀ मूल्य : रु. ३)५०

❀ सस्करण प्रथम–११००
सवत् २०४३ (सन् १९८६)

❀ मुद्रक
जैन आर्ट प्रेस
समता भवन बीकानेर (राज.)

मर्यादा ही उत्तम आचरण का सुरक्षा–कवच है। प्रभु महावीर का सदेश है कि आचरण की धारा सम्यक् ज्ञान के चट्टानी तटवधो मे ही मर्यादित रहनी चाहिये।

आचार्य स्व. गुरुदेव श्री गणेशीलाल जी म.सा. ने श्रमण सस्कृति की सुस्थिति एव उन्नयन के लिए 'शात क्राति' का अभियान चलाया। इस अभियान को ओजस् प्रदान करना साधु वर्ग का दायित्व है। इसके लिए साधुवर्ग को जहां साधना के पथ पर अविचल रूप से आरूढ रहना है वहीं अपनी साधनागत अनुभूतियो की अभिव्यक्ति द्वारा सामान्यजन के लिए सुदृढ, साधना–सेतु का निर्माण भी करते चलना है। 'शात क्राति' आत्म–साधना से ही परात्म–साधना के उदय का अभियान है। जो आत्म पक्ष, परात्म पक्ष एव परमात्म पक्ष तीनो को उजागर करने मे सक्षम है। साधु एवं साध्वी समाज ने विगत वीस वर्षों मे सम्यक् ज्ञानार्जन की दिशा मे अच्छी दूरी तय की है। रथ वढ रहा है, पथ भी प्रशस्त हो रहा है .

—आचार्य श्री नानेश

प्रकाशकीय

△ साधुमार्ग की इस पवित्र-पावन धारा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए बडे-बडे आचार्यों ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । भगवान् महावीर के बाद अनेक बार आगमिक धरातल पर क्राति का प्रसग आया है जिसका उद्देश्य श्रमण सस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने का रहा । ऐसी क्राति धारा मे, क्रियोद्धारक, महान् आचार्य श्री हुक्मी चन्दजी म सा. का नाम विशेष रूप से उभर कर सामने आता है । तत्कालीन युग मे जहा शिथिलाचार व्यापक तौर पर फैलता जा रहा था । शुद्ध साधुत्व की स्थिति विरल ही परिलक्षित होती थी । बडे-२ साधु मठो की तरह उपाश्रयो मे अपना स्थान जमाये हुए थे । चेलो के पीछे साधुता बिखरती जा रही थी । ऐसे युग मे आचार्य श्री हुक्मीचन्द जी म. सा ने उपदेशों से ही नही अपितु अपने विशुद्ध एव उत्कृष्ट सयममय जीवन से जन मानस को प्रभावित किया । आचार्य प्रवर केवल तपस्वी अथवा सयमी ही नही थे वरन् श्रमण-सस्कृति के गहरे आगमिक अध्येता श्रुतधर थे । आपके जीवन का ही प्रभाव था कि हजारो स्त्री-पुरुष आपके चरण सान्निध्य को पाने के लिए लालायित रहते थे । 'तिन्नाण तारयाण' के आदर्श आचार्य प्रवर ने योग्य मुमुक्षुओ को दीक्षित किया और जो देशव्रती बनना चाहते थे, उन्हे देशव्रती बनाया । इस प्रकार सहज रूप से ही

चतुर्विध संघ का प्रवर्तन हो गया। समुद्र में जिस प्रकार दूर तक गगा का पाट दिखलाई देता है वैसे ही जैन धर्म के समुद्र मे आचार्य प्रवर की यह धारा एकदम अलग-थलग सी परिलक्षित होने लगी। यहा से फिर साधुमार्ग मे एक क्राति घटित हुई। जिस क्राति की धारा पश्चात् वर्ती आचार्यों से निरन्तर आगे बढी। आज हमे परम-प्रसन्नता है कि समता विभूति विद्वद्शिरोमणि जिन शासन प्रद्योतक धर्मपाल प्रतिबोधक आचार्य श्री नानेश के सान्निध्य की हमे प्राप्ति हुई है। श्रद्धेय आचार्य प्रवर का व्यक्तित्व कर्तृत्व अनूठा एव महनीय है। आपने एक साथ २५ (पच्चीस) दीक्षाए देकर सैकडो वर्षो के अतीत के इतिहास को प्रत्यक्ष कर दिखाया है। ऐसी एक नही अनेक क्रातिया आचार्य प्रवर के सान्निध्य मे घटित हो रही हैं। विशुद्ध सयम पालन के साथ-साथ आपके सान्निध्य मे आपके शिष्य-शिष्या रूप साधु-साध्वी वर्ग ने सम्यक् ज्ञान-विज्ञान की दिशा मे भी आश्चर्यजनक विकास किया है।

शात क्राति के अग्रदूत स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशी लालजी म सा की स्मृति मे श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ ने श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार की स्थापना की। ज्ञान भण्डार मे अनेकानेक प्रकाशित ग्रथो का सचयन कर उन्हे भी श्री अ भा साधुमार्गी जैन साहित्य समिति सर्वजन हितार्थ प्रकाशन कर रही है। इसी सकल्प की क्रियान्विति मे इस कृति को भी "श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार" से प्राप्त कर प्रकाशित करने मे सघ हार्दिक सतुष्टि का अनुभव कर रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक 'ईर्ष्या की आग' समता विभूति आचार्य श्री नानेश के प्रवचनो का अश है। आपश्री रमेश, गणेश की कहानी को अत्यन्त रोचक ढग से फरमाया करते हैं। इसी कहानी को सकलित कर आचार्य प्रवर के भावों को ध्यान मे रखते हुए विद्वद्वर्य श्री ज्ञान मुनिजी म सा. ने आज की शैली मे सपादित करने का सुन्दर प्रयास किया है। इस घटनाक्रम से पाठको को एक नया दिशा निर्देश मिलेगा।

चुन्नीलालजी मेहता
अध्यक्ष

गुमानमल चोरड़िया
सयोजक

धनराज बेताला
मत्री

साहित्य समिति

स्वतः स्फूर्त

सत्य को अभिव्यक्ति देने की विविध विधाओं मे एक विधा कथा भी है। कथा के माध्यम से आबाल-वृद्ध को सहज सरल ढग से शाश्वत सत्य समझाया जा सकता है। कथा की शैली मे जीवन का मौलिक स्वरूप प्रस्तुत करने की परम्परा चिर-अतीत से चली आ रही है।

जैन धर्म मे शाश्वत रूप से विद्यमान 'द्वादशागी' मे भी अनेक शास्त्र कथाओ से भरे है। भगवान् महावीर, गौतम बुद्ध, जैमिनि प्रभृति धर्म प्रवर्तको ने तथा जीसस, सुकरात, कन्फ्यूशियस आदि अनेक दार्शनिक चिन्तको ने घटित अघटित अनेक उदाहरणो के माध्यम से अपने शिष्यो को समझाने का प्रयास किया है। अत. यह तो स्पष्ट है कि जन-मानस का आकर्षण कथा के प्रति प्राचीन युग से चला आ रहा है।

आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य मे भी यद्यपि जनता का आकर्षण कथा के प्रति है तथापि कथा के प्रस्तुती-करण मे अन्तर आ गया है, शैली मे परिवर्तन आ गया है। आज जिस शैली मे कथा-घटना को प्रस्तुत किया जाता है, वर्तमान की भाषा मे उसे उपन्यास के नाम से सबोधित किया जाता है। आज के युवको का ही नही सामान्य जनता का भी उपन्यास के प्रति गहरा आकर्षण बना है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि उसी विधा मे घटनाक्रम प्रस्तुत किया जाय ताकि जन-मानस सही दिशा मे गति कर सके।

प्रस्तुत "**ईर्ष्या की आग**" को उसी विधा में प्रस्तुत करने का किंचित् प्रयास किया गया है ।

ईर्ष्या उन्नति के लिये अर्गला है, पतन का महा द्वार है तो गुण ग्राहिता उन्नति का प्रवेश द्वार है । यह घटनाक्रम से बतलाने का उपक्रम किया गया है ।

आराध्य देव, परम श्रद्धेय, गुरुदेव आचार्य श्री 'नानेश' जैन जगत् के जाज्वल्यमान नक्षत्र और एक सुविशाल संघ के आचार्य एवं सफल सचालक है ।

आपश्री व्याख्यानो मे समय-समय पर गणेश, रमेश की कहानी अत्यन्त रोचक ढग से फरमाया करते हैं। उसी कहानी को मूल मानकर उसे इस रूप मे सकलित सपादित कर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। आशा है इससे जनता को सही दिशा निर्देशन मिलेगा ।

मोटा उपाश्रय
घाटकोपर (बम्बई)

मुनि ज्ञान
२४-११-८५

ईर्ष्या
की
आग

—आचार्य श्री नानेश

□ विशाल भवन के मुख्य द्वार में प्रवेश कर रहे तीन दिन के भूखे अवधेश को द्वारपाल पठान ने रोकते हुए अन्दर जाने के लिये निषेध कर दिया।

अवधेश ने कहा भाई पठान! इस भवन के मालिक सुधेश मेरे सहोदर भ्राता हैं। मैं उनसे मिलने आया हू। तुम मुझे अन्दर जाने दो। पर पठान उसे व्यग्य और भेदभरी दृष्टि से देखते हुए बोला—अहो यह दुबला-पतला शरीर, फटे हाल जीवन, मैले-कुचेले-चीथडे कपडे और कहता है मैं सुधेश मालिक का भाई हू। कहा राजा भोज और कहा गगू तेली। चल हट यहा से, तेरे जैसे एरे-गेरे-नत्थूखेरे, उठाउगिरे बहुत आते हैं यहा पर। चल रास्ता नाप अपना।

पठान की आक्रोश भरी वाणी को सुनकर भी गुस्सा नही करते हुए शाति के साथ अवधेश ने कहा—भाई पठान! तुम इतने विगडते क्यो हो। तुम्हे केवल मेरा बाहरी आकार-प्रकार, वेश ही दिखलाई दे रहा है और उसी आधार पर तुम मूल्याकन भी कर रहे हो। पर मैं ऐसा-वैसा नही हू। परिस्थितियो के मारे मेरी यह दशा बन गई है। तुम एक बार मुझे भीतर जाने दो फिर तुम्हे ज्ञात हो जायेगा कि वस्तुत मैं, तुम्हारे मालिक सुधेश का भाई हू या नही।

नही, मैं नही जाने देता तुमको भीतर। तुम चुपचाप जाते हो या फिर मुझे लठ घुमाना पडेगा। पठान चिल्लाया।

फिर भी शात अवधेश ने समझाने के लहजे मे उसे कहा, अच्छा तुम मुझे जाने नही देते हो तो कोई बात नही। चलो, तुम खुद ही अन्दर जाकर अपने मालिक से पूछ लो कि बाहर जो अवधेश खडा है वह आपका भाई है या नही ? वे यदि अन्दर बुलाए तो ही मैं अन्दर आऊ गा ।

पठान बौखलाया—अबे दुवले की जान, चला जा यहा से हम छोटी-छोटी बातो के लिये मालिक से पूछने नही जाता है । वह तो हम ही निपटा देता है । तुम्हारे जैसे पचासो व्यक्ति यहा आते है । मै सबकी फरियाद लेकर जाऊ गा तो हमारा मालिक गुस्से मे आकर हम को ही भगा देगा । भाग जा यहा से, मेरा माथा मत चाट, क्योकि हमारा गुस्सा बहुत तेज होता है । अगर हम गुस्से मे आ गया तो हमारा एक प्रहार ही तुम्हारे लिये घातक सिद्ध होगा ।

बिचारा अवधेश अन्त मे एक बार फिर कोशिश करते हुए बोला—दया करो भाई ! लेकिन वह जब किसी भी हालत मे मानने को तैयार नही हुआ तो वह मुख्य द्वार से ही भैया सुधेश, भैया सुधेश, भैया सुधेश की आवाजे लगाने लगा ।

अवधेश की इन आवाजो के शोरगुल से गुस्से मे तमतमाते हुए पठान ने, उसे एक जोरदार धक्का मारते हुए कहा—भाग यहा से नही तो मार-मार के भुर्ता बना दू गा । साला हमारे मालिक को भाई कहता है ।

तीन दिन का भूखा विचारा अवधेश फौलादी

पहलवान के धक्के को सहन नही कर सका। आखो मे अन्धेरा आ गया। एक तरफ जा गिरा और वेसुध हो गया।

कुछ समय बाद जब होश आया और उसकी दृष्टि ज्यो ही भवन के ऊपरी वातायन पर पडी तो वहा अपने भैया सुधेश को बैठे पाया। तो उसमे एक बारगी फिर जोश भर आया। अपनी सारी कमजोरी को भूल कर अवधेश ने फिर एक बार सुधेश को आवाज लगानी प्रारम्भ की।

सुधेश, जो कि पहले से ही यह घटना देख रहा था। जब उसी को इंगित करके अवधेश जब, सुधेश भैया, सुधेश भैया को आवाज लगाने लगा तो सुधेश बौखलाया—अरे कौन है यह बदमाश! चिल्ला-चिल्लाकर क्यो मेरे काम मे विघ्न पैदा कर रहा है। हटाओ इसे जल्दी से। मालिक की बात सुनते ही नौकरो ने एक बार फिर धक्के मार कर अवधेश को धकेल दिया। बेचारा अवधेश जो पहले से ही तीन दिन से भूखा होने से कमजोर तो था ही फिर इन धक्को की चोटो से अपने होश-हवास खो बैठा। घण्टो पडे रहने के बाद होश आने पर धीरे-धीरे उठता हुआ अपने घर की ओर रवाना हो गया।

अहो! कैसा है ससार का विचित्र रूप। एक ही मा के पेट से जन्म लेने वाले सहोदर भाइयो के बीच चद-चादी के टुकडो ने कितनी बडी भेद की दीवार खडी कर दी। धन की चकाचौंध ने मानवता, दया एव भाई-भाई के स्नेह स्रोत को ही सुखा डाला। भ्रातृप्रेम को धन ने अपने रग मे रगकर आत्मीयता के स्थान पर सघर्ष का बीज बो दिया। जब व्यक्ति के दिमाग मे धन का लोभ

जगता है तो उस के सामने कर्म-धर्म, पुण्य-पाप, नीति-अनीति सभी गौण हो जाते है । उसके दिमाग मे बस येन-केन प्रकारेण धन पाने की लालसा ही बनी रहती है ।

(२)

सुधेश और अवधेश, मेदिनीपुर के निवासी श्री सपत सुभद्र सेठ के पुत्र थे । सुधेश बडा और अवधेश छोटा था । सुभद्र सेठ के यहा धन सम्पत्ति की किसी भी प्रकार की कमी नही थी । दोनो बच्चो का पालन-पोषण होने लगा । सुधेश बचपन से ही स्वार्थी और कपटी था, तो अवधेश ठीक इसमे विपरीत परमार्थी एव सरल था । दोनो सहोदर होते हुए भी उनकी प्रकृति मे यह सबसे बडा अन्तर था । सुधेश पढ लिख कर बडा हुआ और पिताजी को व्यापार मे सहयोग देने लगा । सुधेश का विवाह भी हो गया । अवधेश अभी पढ ही रहा था । इसी बीच सुभद्र सेठ की अचानक मृत्यु हो गई । पिता के चले जाने से घर-गृहस्थी का सारा भार सुधेश के कन्धो पर आ पडा । सुधेश दिनभर व्यापार मे ही व्यस्त रहने लगा । घर का सारा कार्य भी सुधेश की धर्म पत्नी भामिनी ही सभालने लगी । क्योकि सुधेश की मा भी कुछ समय बाद परलोक सिधार गई थी । भामिनी की प्रकृति भी सुधेश की तरह ही थी । वल्कि सुधेश से वह एक कदम और आगे रखती थी । और जब उसे घर का सारा अधिकार मिल गया तो उसके गर्व का भी पार नही रहा । वह सभी को अपने से निम्न समझने लगी नौकरो-चाकरो के साथ तो वह दुर्व्यवहार करती ही थी, पर अपने भोले-भद्रिक देवर अवधेश के साथ भी अभद्र व्यवहार

करते नहीं चूकती थी। और तो और खाने-पीने मे भी दुभात-भेद कर देती थी।

जब उसका पति सुवंश घर पर आता तो उसे स्वादिष्ट गर्म-गर्म भोजन कराती थी और अपने देवर को ठण्डा तथा अवशेषाहार दे देती थी। घर का काम भी उससे बहुत लेती रहती थी। किन्तु सतोषी एव सरल अवधेश अपनी भाभी को भी मा के तुल्य ही मानता था। वह भाभी के हर कटु वचन को शाति के साथ सह जाता था। और भाभी का बतलाया सारा काम भी पूर्ण कर देता था। भाभी जो भी खाने को दे देती, उसे समभाव के साथ खा लेता था।

अवधेश यद्यपि छोटा था किन्तु विचार बहुत उन्नत थे। क्योकि सत्सगति जैसी मिलती है, व्यक्ति के विचार भी वैसे ही बन जाते है। अवधेश प्रारम्भ से ही कनक काता के त्यागी, निर्ग्रन्थ अनगार–साधु–मुनिराजो के सत्सग मे आया जाया करता था। उनके सदुपदेश भी सुना करता था। उसी का प्रभाव था कि वह हर परिस्थिति को समभाव के साथ सह जाता था। एक बार उसने एक महायोगी से सुना था कि यदि सुखी बनना चाहते हो तो महाप्रभु महावीर के इस एक सिद्धात 'समो निन्दापससासु' को जीवन मे उतार लो अर्थात् हर क्षण, हर परिस्थिति मे, निन्दा या प्रशसा मे समभाव रखा जाय। यदि यह सिद्धात भी जीवन मे सही रूप मे उतर जाता है तो वह व्यक्ति अन्तत परमसुखी बन जाता है। क्योकि निन्दा और प्रशसा मे समभाव रखने पर पूर्वबद्ध कर्मो की निर्जरा होती है और आगे भी अशुभ कर्मो का बधन नही होता है।

जगता है तो उस के सामने कर्म-धर्म,पुण्य-पाप,नीति-अनीति सभी गौण हो जाते है। उसके दिमाग मे बस येन–केन प्रकारेण धन पाने की लालसा ही बनी रहती है।

(२)

सुधेश और अवधेश, मेदिनीपुर के निवासी श्री सपत सुभद्र सेठ के पुत्र थे। सुधेश बडा और अवधेश छोटा था। सुभद्र सेठ के यहा धन सम्पत्ति की किसी भी प्रकार की कमी नही थी। दोनो बच्चो का पालन–पोषण होने लगा। सुधेश बचपन से ही स्वार्थी और कपटी था, तो अवधेश ठीक इसमे विपरीत परमार्थी एव सरल था। दोनो सहोदर होते हुए भी उनकी प्रकृति मे यह सबसे बडा अन्तर था। सुधेश पढ लिख कर बडा हुआ और पिताजी को व्यापार मे सहयोग देने लगा। सुधेश का विवाह भी हो गया। अवधेश अभी पढ ही रहा था। इसी बीच सुभद्र सेठ की अचानक मृत्यु हो गई। पिता के चले जाने से घर–गृहस्थी का सारा भार सुधेश के कन्धो पर आ पडा। सुधेश दिनभर व्यापार मे ही व्यस्त रहने लगा। घर का सारा कार्य भी सुधेश की धर्म पत्नी भामिनी ही सभालने लगी। क्योकि सुधेश की मा भी कुछ समय बाद परलोक सिधार गई थी। भामिनी की प्रकृति भी सुधेश की तरह ही थी। बल्कि सुधेश से वह एक कदम और आगे रखती थी। और जब उसे घर का सारा अधिकार मिल गया तो उसके गर्व का भी पार नही रहा। वह सभी को अपने से निम्न समझने लगी नौकरो-चाकरो के साथ तो वह दुर्व्यवहार करती ही थी, पर अपने भोले-भद्रिक देवर अवधेश के साथ भी अभद्र व्यवहार

करते नही चूकती थी । और तो और खाने-पीने मे भी दुभात–भेद कर देती थी ।

जब उसका पति सुघेश घर पर आता तो उसे स्वादिष्ट गर्म–गर्म भोजन कराती थी और अपने देवर को ठण्डा तथा अवशेषाहार दे देती थी । घर का काम भी उससे बहुत लेती रहती थी । किन्तु सतोषी एव सरल अवधेश अपनी भाभी को भी माँ के तुल्य ही मानता था । वह भाभी के हर कटु वचन को शाति के साथ सह जाता था । और भाभी का बतलाया सारा काम भी पूर्ण कर देता था । भाभी जो भी खाने को दे देती, उसे समभाव के साथ खा लेता था ।

अवधेश यद्यपि छोटा था किन्तु विचार बहुत उन्नत थे । क्योकि सत्सगति जैसी मिलती है, व्यक्ति के विचार भी वैसे ही वन जाते है । अवधेश प्रारम्भ से ही कनक काता के त्यागी, निर्ग्रन्थ अनगार–साधु–मुनिराजो के सत्सग मे आया जाया करता था । उनके सदुपदेश भी सुना करता था । उसी का प्रभाव था कि वह हर परिस्थिति को समभाव के साथ सह जाता था । एक बार उसने एक महायोगी से सुना था कि यदि सुखी वनना चाहते हो तो महाप्रभु महावीर के इस एक सिद्धात 'समो निन्दापससासु' को जीवन मे उतार लो अर्थात् हर क्षण, हर परिस्थिति मे, निन्दा या प्रशसा मे समभाव रखा जाय । यदि यह सिद्धात भी जीवन मे सही रूप मे उतर जाता है तो वह व्यक्ति अन्तत परमसुखी वन जाता है । क्योकि निन्दा और प्रशसा मे समभाव रखने पर पूर्ववद्ध कर्मों की निर्जरा होती है और आगे भी अशुभ कर्मो का वधन नही होता है ।

ग्रवधेश इस सिद्धान्त को जीवन की गहराइयो मे उतार कर चल रहा था। परिणामस्वरूप वह भाभी एव भाई के द्वारा दिये गए हर कष्ट को समभाव के साथ सह जाता। भाई भी भाभी के कहे-कहे ग्रपने भाई को प्रताडना देने लगा था। इन्ही प्रताडनाग्रो के बीच समय निकल गया ग्रौर ग्रवधेश भी बडा हो गया। नही चाहते हुए भी, लोग क्या कहेगे इस व्यावहारिकता को ध्यान मे रखते हुए, सुधेश ने ग्रवधेश का एक सादे समारोह के साथ एक साधारण सी गरीब घराने मे जन्मी, यामिनी नाम की कन्या के साथ विवाह सस्कार कर दिया।

ग्रब ग्रवधेश-यामिनी दोनो का जीवन-क्रम ग्रागे बढने लगा। इधर भामिनी का ग्रभियान भी कुछ रग लाने लगा वह ग्रवधेश की तरह यामिनी के साथ भी दुर्व्यवहार करने लगी। यामिनी सुबह से शाम निरन्तर काम करती ग्रौर खाने को रूखा-सूखा मिलता तो उसे भी समभाव के साथ खा लेती। इतना सब कुछ करने पर भी भामिनी वचन बाण फेक ही देती थी।

दिन भर खाती रहती है, काम कुछ करती नही। तू ग्रौर तेरा पति दोनो ही ग्रालसी हो। ग्रवधेश भी व्यापार-धधा कुछ करता नही है। भाई के टुकडो पर पल रहा है। ग्राखिर कब तक हम खिलाते रहेगे। काम तो करना ही पडेगा।

इस प्रकार के शब्दो की लम्बी परपरा भामिनी के टेपरिकार्डर से निकलती रहती थी। पर ग्राश्चर्य ! यामिनी

भी अववेण की तरह ही गजब की सहनशील निकली । यामिनी की सारी बातो को शान्ति के साथ सहन कर जाती थी, पी जाती थी ।

अवधेश और यामिनी दोनो ही क्षमाशील थे । समय का चक्र अनवरत रूप से चलता रहा और इधर इनकी समभाविता भी बढती रही, तो इधर सुधेश एव भामिनी का आक्रोश भी दिनोदिन बढता चला गया । आखिर एक दिन वह भी आ गया कि सुधेश और भामिनी ने साफ-साफ शब्दो मे कह दिया-अवधेश और यामिनी को, कि तुम अलग हो जाओ, अलग रहो, कमाओ और खाओ-पीओ । हम तुम्हे अब हमारे साथ नही रखेगे ।

भाई और भाभी के इन स्पष्ट शब्दो को सुनकर अवधेश और यामिनी ने विचार किया, अब तो अलग ही रहना होगा । क्योकि भाई हमे पास रखने को तैयार नही है ।

अवधेश ने निवेदन किया सुधेश को-भैया, तुम्हारी यही इच्छा है तो हम अब अलग रहने लगेगे । आपने तो हमारे ऊपर बहुत उपकार किये हैं । मुझे पढाया-लिखाया, बडा किया और विवाह भी किया । आपके उपकारो को मैं कभी नही भूल सकता । आप मेरे माता-पिता के तुल्य हैं, आपके हर आदेश की अनुपालना मेरे लिये अनिवार्य है । आपके निर्देशानुसार मैं अलग जाने के लिये तत्पर हू ।

इस प्रकार कहते हुए अवधेश एव यामिनी ने सुधेश एव भामिनी के पैर छूए और उनके बतलाए गए टूटे-फूटे

खण्डहर मकान मे, जो कि बाप-दादाओ से वैसा ही पडा था, अब तो एक भूत महल की तरह लगता था, उस मकान मे चले गए ।

निष्ठुर भाई ने उन्हे धन-सपत्ति तो दूर, एक जून अनाज के दाने भी नही दिये । अहो, कनक-कान्ता के मद मे व्यक्ति के भीतर कितनी स्वार्थ निष्ठुरता आ जाती है । जिसके पीछे भाई-भाई का प्रेम भी शत्रुता मे बदल जाता है ।

जहा अवधेश की क्षमाशीलता, भाई-भाभी के प्रति पूज्यभाव आकाश की ऊचाइयो को छू रहा था तो सुधेश की तुच्छता, अमानवीयता, निष्ठुरता, अध पतन की गहराइयो मे उतर रही थी ।

वस्तुत आलीशान बगलो मे रहने वाले, बाहरी वेशभूषा से सुसज्जित, भौतिकता की चकाचौध को ही सब कुछ समझने वाले श्रीपतियो मे भीतरी सदाचारता, नैतिकता, आत्मीयता, मानवीयता तो विरल-कम ही देखने को मिलती है ।

सुधेश और भामिनी के दिल से मानो एक भार उतर गया । क्योकि उनके मन मे एक चिन्ता खाए जा रही थी कि अवधेश और यामिनी यद्यपि काम तो बहुत करते है पर कभी भी किसी के भी बहकावे मे आकर हम से पिता की सपत्ति का आधा हिस्सा माग सकते है, ऐसी स्थिति मे बहुत बडी समस्या खडी हो जाएगी । अत इसे पहले ही यहा से निकाल देना चाहिये । यदि कुछ मागेगा भी तो

थोडा वहुत देकर छुट्टी कर देंगे । अवधेश के हिस्से की सपत्ति को दवाने के चक्कर मे ही सुधेश और भामिनी ने यह नाटक खेला था । और वे इस नाटक मे अपनी दृष्टि मे सौ मे सौ प्रतिशत सफल हो गए । क्योकि उन्हे जो यह आशा थी कि अवधेश पिता की सपत्ति के हिस्से की माग करेगा और कुछ न कुछ देना ही पडेगा । पर अवधेश ने तो कुछ भी माग नही की बल्कि वह तो सुधेश भामिनी का वहुत उपकार जताने लगा । और कुछ भी मागे बिना ही घर से निकल गया । अवधेश की इस सदाशयता का लाभ उठाया सुधेश और भामिनी ने । उन्होने उसे कुछ भी नही दिया और कुछ भी न देकर अपने आप मे खुश हो गए । सोचने लगे अच्छा बुद्धू बनाया अवधेश को पिता की सबकी सब सपत्ति अपने हाथ लग गई । अपनी कुटिलताओ पर उन्हे गर्व होने लगा ।

इधर अवधेश अपनी पत्नी यामिनी को लेकर उस टूटे खण्डहर मे पहुचा । सारा सामान धूल–धूसरित था । यामिनी ने परिश्रम से एक कमरे को साफ कर रहने योग्य बनाया । अवधेश और यामिनी विचार करने लगे कि पेट भरने के लिये कुछ न कुछ तो करना ही पडेगा । अभी तो खाने के लिये भी कुछ नही है । अवधेश ने सोचा मजदूरी ही क्यो न की जाय । विशाल भवन मे रहनेवाला अवधेश नि सकोच भाव से मजदूरी के लिये तत्पर हो गया । उसके मन मे किसी प्रकार की ग्लानि नही हुई । क्योकि उसकी दृष्टि मे धन–सपत्ति का वो महत्त्व नही था कि जिससे उसे किसी प्रकार का अभिमान हो । जब धन सपत्ति पर व्यक्ति को अभिमान नही होता है तो उसके

चले जाने पर उसे किसी प्रकार का दुख भी नही होता है। दुख तभी होता है, जब किसी वस्तु का उसकी दृष्टि मे महत्त्व हो और वह चली जाय। अवधेश और यामिनी की दृष्टि मे धन का उतना महत्त्व नही था, जितना अपने नैतिक जीवन का मूल्याकन था। जहा वह एक दिन अपनी विशाल दुकान पर गादी-तकिया के सहारे बैठा करता था, वहा आज उसी शहर मे अवधेश को मजदूरो की लाइन मे लगते हुए भी किसी प्रकार के दुख की अनुभूति नही हुई है।

अवधेश ने ईमानदारी एव प्रामाणिकता के साथ मजदूरी की, उससे उसे जो कुछ भी मजदूरी मे मिला, उन पैसो से वह अपने व यामिनी के लिए कुछ साधारण सा भोजन खरीदकर उस टूटे-फूटे खण्डहर की ओर चल पड़ा।

इधर यामिनी जो कि मकान के कुछेक उपखण्ड साफ कर चुकी थी। उसने दूर से अपने पति को आते देखा तो लगा कि कुछ लेकर आ रहे है, वह नीचे पहुची और पति का स्वागत किया। दोनो कमरे मे पहुचे। अवधश जो साधारण सा भोजन लाया था, उसे अत्यन्त स्नेह के साथ दम्पति खाने लगे। वह साधारण भोजन भी आज अत्यन्त स्वादिष्ट लग रहा था। उन्हे इस भोजन से एक विचित्र प्रकार के सुख की अनुभूति होने लगी, जो रस अच्छे-अच्छे पक्वान्नो के खाने से भी नही मिलता।

भोजन करते समय अवधेश के कानो मे महापुरुष के प्रवचन के ये शब्द गूजने लगे, भोजन की रसानुभूति,

जितनी वस्तुओ पर आधारित नही है, उससे कई गुणा अधिक व्यक्ति की मानसिक भावनाओ पर है। यदि भयकर गुस्से मे कोई अच्छे से अच्छा भोजन भी करले या गुस्से मे आकर कोई परोसे तो भोक्ता को वह भोजन न तो स्वादिष्ट ही लगेगा और न ही उसका स्वस्थ परिणमन ही हो सकेगा। मन मे जितनी तनाव मुक्ति रहेगी, विचारो मे जितनी समरसता रहेगी, तो लूखा-सूखा रूक्ष-शुष्क भोजन भी स्वादिष्ट एव पाचक बन जाएगा। यह एक विज्ञान सम्मत प्रक्रिया है। अवधेश और यामिनी के पास कुछ भी नही होते हुए भी वे आज अपने आप मे विशेष आनन्द की अनुभूति एव हल्कापन अनुभव कर रहे थे। क्योकि अब तक तो भाई-भाभी के अधीनस्थ चल रहे थे, उनकी हर इच्छा के अनुसार ही उन्हे कार्य पूर्ण करना होता था, चाहे वह कार्य अच्छा हो या न हो। ऐसी परिस्थिति मे भले उन्हे अच्छे से अच्छा भोजन भी क्यो न खाने को मिले, वह स्वादिष्ट नही लग सकता।

उन्मुक्त आकाश मे उडने वाले पक्षी को सोने के पिजरे मे बद कर उसके सामने रत्नजटित कटोरो मे क्यो न स्वादिष्ट से स्वादिष्ट मेवा रख दिया जाय तो भी उस पक्षी को जो बन्धनमुक्त आकाश मे रहते हुए रूक्ष-शुष्क भोजन खाने मे जिस स्वादिष्टता की अनुभूति होती है, वैसी अनुभूति उस सोने के पिजरे मे पडे मेवे से भी नही होती। जब बाहरी बन्धन भी व्यक्ति के लिये अत्यन्त दुखदायी होता है तो कर्मों का आन्तरिक, बन्धन कितना कष्टप्रदायी होगा ? और उससे होने वाली मुक्ति कितनी शान्ति की अनुभूति कराने वाली होगी, यह तो अनुभूति ही की जा सकती है।

आज यामिनी और अवधेश, भाई-भाभी के बंधनमुक्त आनन्द की अनुभूति कर रहे थे। उन्हे अभाव मे भी बहुत बडे सद्भाव की अनुभूति हो रही थी। दोनो आनन्दपूर्ण अनुभव मे मनोविनोद करते हुए आज की निशा का स्वागत करते हुए निद्रा मे निमग्न हो स्वप्निल ससार मे पहुच गए। कल्पना की दुनिया मे परिभ्रमण करने लगे।

(२)

भौतिकता का उत्कर्ष चारो तरफ बिखरा हुआ पडा है। स्वर्ण-रजत, हीरे-जवाहरात बेशुमार भरे पडे हैं। सैकडो नौकर-चाकर इधर से उधर घूम रहे है। बडे-बडे श्रेष्ठीवर्य आ आकर स्वागत कर रहे है। सभी के पास कोई न कोई नया उपहार है। एक के बाद एक उपहार ला लाकर टेबुल पर सजाए जा रहे है। अवधेश और यामिनी आज विशेष परिधान मे हीरेजटित स्वर्णाभूषणो से सज्जित हो एक नौनिहाल बच्चे को गोद मे लिये आगन्तुक सभी महानुभावो का स्वागत कर रहे हैं। इस दम्पति के मुखमण्डल पर आज विशेष प्रसन्नता का उभार आ रहा है। क्योकि आज उनके यहा पुत्रोत्सव मनाया जा रहा है। शहर के हर श्रेष्ठी के मुख से अवधेश और यामिनी दम्पत्ति के लिये प्रशसा के स्वर उभर रहे है। वाह-वाह! कैसा सुखद जीवन है इस दम्पति का। कितनी ऋद्धि-समृद्धि, धन-वैभव। जिसकी कल्पना भी करना शक्य नही। इतना होते हुए भी उनके चेहरे पर अभिमान की जरा भी रेखा नही है। निरभिमान वृत्ति और सरलता के साथ गरीब हो या अमीर, हर आगन्तुक का स्वागत कर रहे है।

नगर मे विविध रग-विरगे परिधानो मे सजे, जाने-माने पुरुष-स्त्रियाँ, वालक-वालिकाए उनके अत्यन्त चित्ताकर्षक भवन मे आ रहे हैं और विशेष प्रकार से सज्जित विशाल हॉल मे शहर के गणमान्य लोग आसीन है। सभी के चेहरो पर प्रसन्नता है। क्योकि आज अवधेश श्रेष्ठीवर्य के द्वारा पुत्रोत्सव की खुशी मे विशेष प्रकार का भोज दिया जा रहा है।

विविध प्रकार की मिठाइया एव नमकीन तथा सुगन्धित दुग्ध आदि अनेक विविध वस्तुए पर्याप्त मात्रा मे भरी पडी हैं। सभी स्वतन्त्रता के साथ उनका उपयोग कर रहे हैं। कोई चटकारे लेकर मिठाई खा रहा है तो कोई नमकीन पर हाथ साफ कर रहा है, तो कोई मीठा व सुस्वादु दूध ही दूध पिये जा रहा है। सभी अपनी-अपनी इच्छित वस्तु का विशेष रूप से उपभोग कर रहे हैं। जितनी चाहिये—उससे भी अधिक खाने की उनको स्वतन्त्रता दी हुई है। सभी लोगो के मुख से एक ही स्वर विशेप रूप से प्रस्फुटित हो रहा है कि वाह-वाह ! क्या दिल है अवधेश सेठ का। कितनी उदारता के साथ अपने पुत्र का उत्सव मना रहा है .।

प्रसन्नता की इन घडियो मे यकायक यामिनी की गोद मे वैठा नवजात शिशु मानो रोने लगा और उसके रोने की आवाज की ओर ध्यान जाते ही यामिनी की तन्द्रा टूट गई। स्वप्न-विलुप्त हो गया। वह अजागृत मस्तिष्क से उभर रहे चित्रो से हट कर जागृत मस्तिष्क मे लौट आई। देखती है—इधर-उधर तो उसे

कुछ भी विशेष दिखलाई नही देता ।

बस वही टूटा-फूटा खण्डहर । जिसके एक उपखण्ड मे वह सोई हुई है, पास ही उसके पति निद्राधीन है । न कोई चित्ताकर्षक भवन है, न ही हीरे-जवाहरात और न ही कही पुत्र का उत्सव मनाया जा रहा है । जब पुत्र ही नही है तो पुत्र का जन्मोत्सव कैसा ? फिर यह सब कुछ क्या था। तन्द्रा के टूटने के साथ ही जब जागृत मस्तिष्क मे चिन्तन की धारा बढी तो ज्ञात हुआ कि अहो! यह तो स्वप्न था, कोई वस्तुस्थिति नही,वस्तुस्थिति तो जैसी पहले थी वैसी ही अब है, फिर भी स्वप्न भी एक विशेष आनन्द की अनुभूति करा रहा है । स्वप्न की इस कल्पना ने मेरे रोए–रोए मे एक विशेष प्रकार का सुखद प्रकपन पैदा कर दिया है। क्यो न ऐसा सुखकारी स्वप्न मै अपने पति को भी सुनाऊ यह सोच कर वह उठी और निद्राधीन पति को, शब्दो मे अत्यन्त मधुरता घोलते हुए जागृत करने का प्रयास करने लगी ।

कुछ ही समय मे अवधेश भी जाग कर बैठ गया तो सामने यामिनी को पाकर पुलकित होता हुआ बोला—अहो—प्रिये ! तुम कब से जग रही हो, बोलो क्या बात है ?

अवधेश के मधुरिम शब्दो को सुन कर यामिनी ने बतलाया—नाथ ! अभी-अभी मैंने एक शुभ स्वप्न देखा है । बोलो क्या देखा ? अवधेश ने पूछा तो यामिनी ने जो कुछ स्वप्न मे देखा था, वह ज्यो का त्यो यथावत् पति के समक्ष प्रस्तुत कर दिया । जिसे सुनकर अवधेश के

अन्दर भी प्रसन्नता की एक लहर व्याप गई। उसने कहा—
प्रिये! वस्तुत तुमने एक सुन्दर स्वप्न देखा है।

मै एक वार कनक-कान्ता के त्यागी निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति की विशुद्ध परपरा को लेकर चलने वाले महायोगी के प्रवचन मे गया था। तव मैंने उनके मुख से सुना था—वे कह रहे थे कि रात्रि की चतुर्थ प्रहर मे यदा कदा आने वाले स्वप्न भविष्य की सूचना करने वाले होते हैं। यदि स्वप्न को देखकर मन मे प्रसन्नता की अनुभूति होती है तो वह स्वप्न भविष्य की सुखद स्थिति की सूचना करने वाला होता है और यदि उस स्वप्न को देखकर मन मे अशान्ति दु ख की अनुभूति होती है तो वह स्वप्न भविष्य के अशुभ का सकेत देन वाला होता है।

तुमने वस्तुत एक शुभ स्वप्न देखा है जो भविष्य के शुभ प्रसग का सकेत दे रहा है। खुले आकाश को देखते हुए लगता है अभी रात्रि का चतुर्थ प्रहर ही चल रहा है और इसी प्रहर मे आने वाले स्वप्न के लिये महा योगी ने शास्त्रीय प्रसगवश फरमाया था। अत यह लगता है कि स्वप्न भविष्य मे यथार्थता का रूप धारण करे। खैर कुछ भी हो स्वप्न हमारे लिये अच्छा है।

इस प्रकार चर्चा–विचर्चा करते हुए अवधेश और यामिनी ने अवशेष रात्रि व्यतीत कर दी। भयकर विपन्नावस्था मे भी उनके चेहरो पर एक विलक्षण प्रकार की शान्ति व्याप गई।

रोज कुआ खोदना और रोज पानी पीने की तरह ही अवधेश को आज भी मजदूरी करनी थी क्योकि घर मे तो कुछ था नही। अत वह प्रात काल ही आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर शहर मे पहुच गया मजदूरी करने के लिये। आज सुबह से शाम तक मजदूरी की। परिणाम स्वरूप कल से आज मजदूरी अधिक मिली। उस मजदूरी मे से कुछ पैसा बचाकर अवशेष पैसो से आवश्यक भोजन सामग्री खरीदी और चल पडा घर की ओर।

घर पर यामिनी इन्तजार कर ही रही थी। परिश्रम से क्लान्त पति को देखकर वह तुरन्त उनकी सेवा मे लग गई। स्वच्छ पानी से उनके पैर प्रक्षालित किये और शीतल जल पीने को दिया। विश्रान्ति के लिये एक स्वच्छ स्थान पहले से ही तैयार कर रखा था। अवधेश मुखादि धोकर पानी पीने के बाद कुछ विश्रान्ति के लिये लेट गया। उसने सारी भोजन सामग्री एव अवशेष पैसा अपनी पत्नी को दे ही दिया था। यामिनी उस प्राप्त सामग्री से भोजन बनाने मे जुट गई। सामग्री तो साधारण ही थी, किन्तु बनाने वाली दक्ष थी। इसलिये उसने जो भोजन बनाया, वह अत्यन्त स्वादिष्ट बना। भोजन सामग्री साधारण ही क्यो न हो, बनाने वाली यदि होशियार है तो उसमे विशिष्ट प्रकार का रस आ ही जाता है। फिर यामिनी के मन मे भी तो समता का विशिष्ट रस हिलोरे ले रहा था। अत भोजन मे स्वादिष्टता आना स्वाभाविक था। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि व्यक्ति जिस समय जिन विचारो

से अनुबंधित होकर जो काम कर रहा है, वह काम भी उन विचारो से प्रभावित हुए विना नही रहता है।

भोजन तैयार कर लेने के बाद यामिनी ने अवधेश को जगाया और दोनो ही प्रसन्नता के साथ भोजन करने लगे।

इस प्रकार अवधेश प्रतिदिन मजदूरी करने जाने लगा और प्राप्त मजदूरी से यामिनी और अवधेश अपने जीवन रथ को प्रसन्नतापूर्वक आगे वढाने लगे। कुछेक महीनो मे ही अवधेश के पास कुछ पैसे इकट्ठे हो गए। तव उसने सोचा कि शहर मे मजदूरी करने की अपेक्षा, जगल मे जाकर लकडिया काटकर भारी वाधकर शहर मे ले आना और उसे वेच देना अधिक अच्छा रहेगा। यही सोचकर अवधेश ने, उसके पास जो पैसे वचे थे, उससे एक कुल्हाडी और एक रस्सी खरीद ली और अव प्रति दिन शहर के वाहर जगल मे जाने लगा और वहा से लकडिया काटकर भारी वाधकर शहर मे लाकर वेचने लगा। इस प्रकार मजदूरी करने मे उसे जो कुछ मिल जाता, उससे उदरपूर्ति के साथ ही गृहस्थ के आवश्यक साधनो की भी पूर्ति करने लगा।

सादगी एव सतोप के साथ उनका जीवन आनन्द मे व्यतीत होने लगा।

(५)

वृक्ष की शीतल छाया एव निर्जीव भूमि को देखकर श्रान्त-क्लान्त एक महायोगी अपने शिष्य परिकर सहित

विश्रान्ति करने की इच्छा से वहा विराज गए और आत्म-चिन्तन की गहराइयो मे गोते लगाने लगे। ये धूप और छाव जिन्दगी के दो शाश्वत सत्य को स्पष्ट कर रही है। कर्मबद्ध आत्मा के जीवन मे कभी पुण्य का उदय, तो कभी पाप का उदय आता रहता है। पर जिस प्रकार धूप सदा बनी नही रहती और छाया भी सदा बनी नही रहती, वैसे ही पुण्य या पाप का उदय सदैव एक समान नही रहता। पुण्य और पाप का घनचक्र घूमता ही रहता है। अत आत्मा को किसी एक से सम्बद्ध होकर अपने विचारो मे उलझन पैदा नही करनी चाहिये। जीवन की कोई भी अवस्था सदा एक समान नही रहती। जब आत्मा इस ससार मे है, तब तक कर्मो की यह धूप–छाव तो चलती ही रहती है। सम्यक-साधना के बल पर ही आत्म को शाश्वत रूप से परमानन्द की छाया मे बिठलाया जा सकता है। शरीर तो इस धूप मे झुलस रहा है पर मेरी आत्मा, अनादि-अनन्त काल से आधि-व्याधि-उपाधि की ऊष्मा से सन्तप्त बनी हुई है। यह बाहरी धूप जितनी दु खप्रद नही, उतनी भीतरी धूप दु खप्रद है। मुझे तो सम्यक् साधना के इस पथ पर अदीनभाव से दृढता के साथ आगे बढते ही जाना है। यह पथ, निश्चय ही परम शाति को प्राप्त कराने वाला है। क्योकि जो जितना अधिक बधन-मुक्त होता है, वह व्यक्ति उतनी ही अधिक सुख की अनुभूति करता है।

साधु परिकर से घिरे चिन्तन की इस धारा मे डूबे शान्त–दान्त–गम्भीर सौम्यमूर्ति के तेजस्वी मुख मण्डल को

दूर से ही देख कर अवधेश के अन्दर सत्सग की भावनाएं तरगित हो उठी । सोचा, अहो परम ज्ञानी मुनिराज लगते हैं । विहार करते थकान अपहार–दूर करने के लिये विराजे है । अभी इन दिनो मे मुझे कोई सत्सगति करने का अवसर ही नही मिला । इस समय तो मैं अदने गृहस्थी के कार्यों मे ही इतना अधिक व्यस्त रहने लगा हू कि किसी मुनिराज की सत्सग मे जाकर उपदेश सुनने का तो प्रसग ही नही आता । आज तो सहज ही प्रसग मिल गया । प्रतिदिन की भाति लकडी काटने आए अवधेश को आज लकडी काटते-काटते विचारो मे तल्लीन महायोगी के दर्शन हुए तो वह काम छोडकर प्रसन्न भाव के साथ उनकी सेवा मे उपस्थित हो, चरण वन्दना कर एक तरफ विनम्र भाव मे बैठ गया ।

विचारविधि मे गतिमान महायोगी के दृष्टिपथ पर जब अवधेश आया तो उन्होने अपनी विचार धारा को रूपान्तरित कर अवधेश को सबोधित किया । महायोगी के सम्बोधन को पा कर भाव–विभोर होकर अवधेश ने एक बार फिर गुरुचरण की वन्दना की और बोला—भगवन् बहुत समय मे आज आप जैसे पवित्र पुरुषो के दर्शन हुए है । आप के दशन करके मैं तो धन्य–धन्य हो गया । अज्ञान अधकार मे भटक रहे प्राणियो के लिये आप प्रकाश स्तम्भ का कार्य करते है । भगवन् ! मेरा भी पथ प्रदर्शन करे । जिज्ञासु भव्य आत्मा को सामने देख कर महायोगी ने अभी चल रही विचार शृ खला को अभिव्यक्ति का रूप दिया । जीवन के शाश्वत सत्य से अवधेश को अवगत कराया । तदनन्तर आत्मोत्कर्ष की दिशा मे आगे बढने के

लिये अवधेश को कुछ त्याग–प्रत्याख्यान करने के लिये प्रेरित किया।

अवधेश ने कहा–भगवन् ! मैं अकिंचन–अभावग्रस्त। जिसके पास दो जून भी खाने को भोजन नही है, वह क्या त्याग कर सकता है। त्याग–प्रत्याख्यान तो धन-सपत्ति से सम्पन्न श्रेष्ठीवर्य ही कर सकते है। क्योकि भगवन् ! जिसके पास कुछ है, वही तो छोड सकता है, जिसके पास कुछ है ही नही तो वह त्याग भी क्या कर सकता है। इसलिये आप तो मुझे कुछ ऐसा सरल उपाय बतलाइये, जिससे मेरी आत्मा का कल्याण हो जाय। महायोगी ने समझाया—अवधेश ! ऐसी बात नही है कि तुम कुछ भी त्याग नही कर सकते। केवल बाहरी धन–सपत्ति ही सब कुछ नही हो जाती है। हर व्यक्ति के पास इतना कुछ होता है, जिसका कि भौतिक पदार्थों से मूल्याकन ही नही किया जा सकता है। देखो न, तुम्हारे पास मे भले ही बाहरी रूप से चद–चादी के टुकडे न हो, किन्तु तुम्हारी शरीर–सपदा भी इतनी मूल्यवान है कि जिसका मूल्याकन भी सम्भव नही।

भगवन्, मैं समझा नही, अवधेश ने बीच मे ही आत्म निवेदन प्रस्तुत किया।

इसे समझाने के लिए मैं तुम्हे एक रूपक दे देता हू—जैसे समझो, तुम्हारे शहर मे कोई विदेश से एक व्यक्ति आया और कहने लगा कि मुझे जीवित व्यक्ति के नेत्र चाहिये। उसके लिये मैं एक लाख रुपये देने को तैयार हू।

क्या कोई व्यक्ति मिलेगा—एक लाख रुपया लेने वाला ? बोलो तुम दे सकोगे—अपने नेत्र ?

महायोगी के समझाने पर अवधेश ने कहा नही भगवन् । मै नही दे सकता उसे नेत्र । इस प्रकार कान, नाक, मुख आदि के लिये भी कोई एक-एक लाख रुपये देने को तैयार है, तो बोलो—तुम दे सकोगे ।

अवधेश—नही भगवन् ! यह सम्भव नही । और कोई हार्ट मागने आ जाये और कहे कि उसके लिये मैं दस लाख रुपया दे सकता हू, तो बोलो हार्ट दे सकोगे ?

भगवन् ! यह भी सम्भव नही ।

तब बतलाओ तुम्हारे पास मे कितनी धन-सपत्ति भरी पडी है । जिनके माध्यम से इस लोक का क्षणिक सुख ही नही अपितु आत्मलोक का अनिर्वचनीय शाश्वत सुख प्राप्त किया जा सकता है, जिसे पाने के लिये अपनी शक्ति को परमार्थ की ओर लगाना अपेक्षित है । त्याग-प्रत्याख्यान भी उसी साधना का एक मुख्य स्रोत है, तो भगवन् ! फिर आप ही फरमाइये—मैं क्या त्याग-प्रत्याख्यान कर सकता हू ? मै आपश्री के सदुपदेश को श्रवण कर धन्य हो गया । आपने मुझे एक सही दिशा निर्देश दिया जो कि मेरे पथ को प्रशस्त करने वाला है । आपश्री जो भी फरमाएगे, मैं वह त्याग करने के लिये प्रस्तुत हू ।

महायोगी ने कहा—तुम काम क्या करते हो ? अवधेश बोला, भगवन् ! प्रतिदिन जगल मे आकर लकडिया

काटना और उसे शहर मे ले जाकर बेच देना, उससे जो कुछ भी मिले उससे अपना और अपनी धर्मपत्नी का भरण-पोषण करना ।

तब तो तुम यह त्याग कर सकते हो कि लकडी काटने जब यहा आते हो तो यहा सूखी और गीली सभी प्रकार की लकडिया मिलती है तो तुम गीली लकडी नही काटने की प्रतिज्ञा ले सकते हो । सूखी लकडी से तुम्हारा काम चल सकता है ।

हा भगवन् ! यह प्रत्याख्यान तो मैं पालन कर सकू गा । यहा तो शुष्क काष्ठ—सूखी लकडी बहुत है, मैं जिन्दगीभर भी काटता रहू तो भी समाप्त होने वाली नही है । आप मुझे गीली लकडी नही काटने की प्रतिज्ञा करा दीजिये ।

महायोगी ने कहा—देखो भावुकता मे आकर किसी भी वस्तु का प्रत्याख्यान नही करना चाहिये । क्योकि बिना सोचे-समझे प्रत्याख्यान कर लेने पर उसका सम्यक्तया पालन करना मुश्किल हो जाता है । क्यो न छोटी से छोटी प्रतिज्ञा ही करनो हो पर प्रतिज्ञा करने से पूर्व उसका अपेक्षित बोध कर लेना चाहिये ।

भगवन् ! मुझ अल्पज्ञ के लिये तो आपके वचन ही प्रमाण है । आप जो भी फरमाए गे मै उसे दृढता से पालन करू गा ।

नही भाई ! 'बाबा वाक्य प्रमाणम्' से आत्मकल्याण

की नीव मजबूत नही बनती। ऐसा व्यक्ति बीच मे ही डगमगा सकता है। इसलिये मैं तुम्हे इस प्रत्याख्यान का भी आवश्यक बोध करा देता हू। तो भगवन्! आपकी महती कृपा होगी—मैं सुनने के लिये प्रस्तुत हू। इस प्रकार कहता हुआ अवधेश अवधानतापूर्वक मुनिराज की वाणी को सुनने के लिये तत्पर हो गया।

महायोगी ने समझाया—भव्यात्मन्। सजीव गीले काष्ठ को हरि और वनस्पति भी कहते है। हरि से भगवान अर्थ भी लिया जाता है। इसलिये व्यावहारिक भाषा मे हरि–वनस्पति मे हरि–भगवान का वास–निवास भी बतलाया जाता है। वैसे सर्वज्ञ–सर्वदर्शी भगवान् तो हरि मे नही रहते है। पर जैन दर्शन की दृष्टि से भगवान्–ईश्वर को तीन प्रकार से बतलाया है—बद्धईश्वर और मुक्त ईश्वर। बुद्ध ईश्वर तो सर्वज्ञ–सर्वदर्शी रूप मे भूमडल पर विचरण कर रहे अरिहन्त भगवान् और ईश्वर, पूर्ण कर्मो से विनिर्मुक्त हो लोकान्त मे विराजमान सिद्ध आत्मा है। किन्तु बद्धईश्वर, कर्म बद्ध ससार की समस्त आत्माए है। वनस्पति मे भी जीवात्माए है। जिन्हे बद्ध ईश्वर कहा जाता है। इस दृष्टि से हरि मे हरि का वासा लिया जा सकता है। वैसे हरि, सूक्ष्म, साधारण, प्रत्येक, तीन प्रकार की कही गई है। सूक्ष्म तो पूरे लोक मे व्याप्त है। वह किसी के काटने मे कटती नही और जलाने से जलती नही है। किन्तु साधारण और प्रत्येक वनस्पति मे ऐसा नही है। उन पर शस्त्र का प्रयोग करने पर हिंसा हो सकती है। एक ही शरीर मे अनन्तानन्त जीवो के समावेशवाली

वनस्पति को साधारण एव एक शरीर मे एक जीव का मुख्य रूप से समावेश हो उसे प्रत्येक वनस्पति कहते हैं। आर्द्र–गीले वृक्ष मे यद्यपि वृक्ष का मूल जीव एक ही होता है किन्तु उसके आश्रित अनन्तानन्त जीव भी हो सकते हे। तव वृक्ष को काटने से वृक्ष के मूल जीव के साथ ही अनन्तानन्त जीवो का प्राणापहरण–हनन भी हो जाता है। जिससे वहुत कर्मवन्धन की स्थिति वनती हे। अत. जव सूखे वृक्ष से काम चल जाता है तो अधिक हिसा वाले गीले वृक्ष को नही काटना चाहिये। इस प्रकार की प्रतिज्ञा करने से तुम वहुत हिंसा से वच जाओगे।

यह तो हुई हिसा–अहिसा से सम्वन्धित वात। किन्तु जव इसका प्रत्याख्यान ग्रहण कर लो। उसके वाद सयोगवश कभी ऐसा प्रसग आ जाय कि तुम्हे सूखा काष्ठ प्राप्त ही न हो तो अपने नियम मे मजवूत रहना होगा। दृढता से किया गया व्रताचरण एक दिन महान् लाभ देने वाला होता है।

भगवन्! मैं समझ गया—अब मुझे प्रतिज्ञा दिला दीजिये। मै उसे दृढता से पालन करने का प्रयास करूगा।

महायोगी ने अवधेश को प्रतिज्ञा दिला दी। अप्रतिबद्ध विहारी महायोगी तो आगे बढ गए पर अपने सयम सदुपदेश का एक गहरा प्रभाव अवधेश पर छोड गए।

अवधेश आज अपने आप मे अत्यन्त प्रसन्नता की अनुभूति कर रहा था। कुछ समय के महायोगी के

सान्निध्य ने, उसके भीतर एक नई स्फूर्ति, नया जोश भर दिया। अपना अवशेषकाम पूर्ण कर वह काष्ठ भारी लेकर शहर मे पहुचा और प्रति दिन की भाति उचित मूल्य मे वेच कर आवश्यक भोजन सामग्री खरीद कर घर की ओर चल पडा। आज कुछ अधिक विलम्ब हो जाने से पतिव्रता सन्नारी यामिनी घर के द्वार पर खडी पति का वेतावी मे इन्तजार कर रही थी। मन मे विचार तरगे उठ रही थी—अहो, मेरे पतिदेव कितने सरल एव सदाचारनिष्ठ हैं। कर्त्तव्य-परायण नव मानवता मे ओत-प्रोत हैं। किस प्रकार मेहनत—मजदूरी करके जीवनयापन कर रहे हैं। मुझे उनके इस पवित्र कार्य मे सदा सहयोग देना है, ताकि हम नैतिकता-मानवता के पथ पर निरन्तर आगे बढ सके। इस प्रकार विचार चल ही रहा था कि उसकी दृष्टि के सामने पतिदेव आ गए। अपने पति को देख कर पुलकित होती हुई यामिनी ने अवधेश का स्वागत किया और दोनो ने साथ ही भीतर प्रवेश किया।

(६)

कुल्हाडा कधे पर डाले, डोरी हाथ मे लिये अवधेश वन मे इधर से उधर खोज करने लगा पर आश्चर्य कि उसे शुष्क-वृक्ष कही दिखाई ही नही देता। जहा जाओ वहा हरे ही हरे वृक्ष दिखलाई दे रहे हैं। सोचा—अरे कल तो मैंने इतने सूखे झाड देखे थे कि जिन्हे अगर मैं काटू भी सही तो वह मेरी जिन्दगी मे तो खत्म होने वाले नही थे और आज जब मैं आया हू तो आश्चर्य कि सूखा झाड तो कही दिखलाई ही नही दे रहा है। सर्वत्र हरे ही हरे झाड दिखलाई दे रहे हैं।

कल ही तो मैंने मुनिराज के पास प्रतिज्ञा की थी कि हरा झाड नही काटूगा और आज सब हरे ही हरे झाड हैं। क्या प्रतिज्ञा तोड कर हरे झाड काटे जाय, नही, ऐसा तो कभी नही हो सकता। उन महात्मा ने मुझे कुछ समझा कर प्रतिज्ञा दिलाई है और वह भी मैंने अपनी इच्छा से ग्रहण की है। अत' इस प्रतिज्ञा को तो मै कभी तोड ही नही सकता।

कल जब मैं शाम को घर पर पहुचा और यामिनी के सामने मुनिराज के दर्शन करने की एव प्रतिज्ञा लेने की बात कही, तो वह भी कितनी खुश हुई थी और कहने लगी थी, हमे अपने जीवन को चलाने के लिए जब अल्प हिंसा से ही काम चल जाय तो हरे झाड काट कर अधिक जीवो को हिंसा नही करनी चाहिये। आपने प्रतिज्ञा लेकर बहुत अच्छा काम किया। प्रतिज्ञा को दृढता से निभाना है—पत्नी के ये वाक्य उसके कान मे गूजने लगे और इधर उसकी आत्मा भी पुकार रही थी कि प्रतिज्ञा को प्राणो के साथ निभाना है। भूखा और प्यासा अवधेश, दिन भर घूमता रहा। वन मे दूर तक भी गया। लेकिन कही भी सूखे झाड उसे देखने को नही मिले। सर्वत्र हरे ही हरे झाड दिखलाई दे रहे थे। दिन भर घूमने के बाद जब कही कुछ नही मिला तो सन्ध्या को निराश हो अवधेश खाली हाथ ही घर की ओर चल पडा। यद्यपि उसे मिला कुछ नही पर प्रतिज्ञा पालन का अन्तस्तोष, उसे आत्मसतुष्टि दे रहा था। पूर्व से ही इन्तजार कर रही यामिनी ने पति का स्वागत किया। दोनो ही अन्दर जाकर बैठे। अवधेश

ने सारी स्थिति से यामिनी को अवगत कराया। वीरागना यामिनी ने पुलकित भाव से कहा, नाथ! आपने व्रत पालन कर बहुत अच्छा किया। सूखा काष्ठ आज नही तो कल मिल जाएगा, कल नही तो परसो और न मिले तो दूसरा काम करके भी अपना पेट भरा जा सकता है। पर जो प्रतिज्ञा ली है उसे तो प्राण-प्रण से निभाना है।

यामिनी की बात सुनकर अवधेश की सारी थकावट जाती रही और वह अपने आप मे एक स्फूर्ति का अनुभव करने लगा। दोनो पति-पत्नी, बिना कुछ खाये ही सो गए और शाति के साथ रात गुजार दी। दूसरे दिन फिर अवधेश, कुल्हाडा और डोरी लेकर नियत समय पर घर से निकल कर जगल की ओर चल पडा। जगल का कोना-कोना छान मारा पर गजब! आज भी उसे कही पर भी सूखे वृक्ष दिखलाई नही दिये। कल भी कुछ खाया न होने से और आज भी पूरे दिन बिना कुछ खाये घूमने से अवधेश अत्यन्त श्रात-क्लात हो चुका था। फिर भी उसने साहस, धैर्य नही छोडा और शाम को पुन बिना कुछ भोजन सामग्री लिये घर की ओर चल पडा। भोजन-सामग्री लेता भी कैसे? जब लकडी ही काटने नही मिली तो लकडी काट कर बेचे बिना पैसे नही मिलते और बिना पैसे भोजन कैसे मिलता। अवधेश थका-मादा घर पहुचा। पतिव्रता सन्नारी यामिनी भी कल से भूखी थी। उसने भी अन्न का एक दाना भी नही खाया था। आज भी जब पति को खाली हाथ आया देखा तब भी मन मे किसी भी प्रकार की उद्विग्नता नही आई। यामिनी ने उसी स्नेह

एवं सम्मान के साथ पति का स्वागत किया—परिचर्या की और सारी ही वस्तुस्थिति की अवगति की, उसे यह जानकर अत्यन्त गौरवानुभूति हुई कि मेरे पति नैतिकता एव व्रतनिष्ठा मे कितने पक्के है । इन्हे दो दिन भूखे रह जाना मजूर है, पर अपने नियम को तोडना मजूर नही । दुनिया मे ऐसे विरले ही व्यक्ति देखने को मिलेगे जो धन-सपत्ति की परवाह किये बिना नियम पर पक्के रहते हो । आज तो सपत्ति के पीछे नियम तो क्या मानव, नैतिकता-मानवता को भी छोड कर वहशीपन धारण किये हुए प्रतीत होता है ।

वस्तुत जहा प्रेम-सौहार्द आत्मीयता होती है वहा भौतिक सपत्ति के अभाव मे भी प्रसन्नता वनी रहती है । जो कि यामिनी और अवधेश आज भी भूखे होते हुए भी परम प्रसन्नता की अनुभूति करते हुए, बढते हुए अधेरे मे बाहर से दृष्टि विक्षेप कर भीतरी चेतना मे प्रविष्ट हो गए ।

(७)

आलीशान भवन का द्वारपाल पठान अवधेश को भीतर जाने के लिये रोक रहा था । अवधेश जिसे कि निराहार का आज तीसरा दिन था । सोचा कि बुभुक्षित अवस्था मे जगल मे जाने के लिए कुछ कमजोरी महसूस हो रही है । अत क्यो न आज एक टाइम की भोजन-सामग्री अपने बडे भाई सुधेश से उधार ले आई जाय । इसी विचार से अवधेश अपने सहोदर भ्राता सुधेश के भवन पर पहुचा था । पर वहा के द्वारपाल ने उसे भीतर प्रवेश ही नही करने दिया । ज्यादा करने पर धक्के मार कर पटक दिया । जब सुधेश भैय्या को

देख कर आवाज लगाई तो वह भी अजनबी बन बैठा। भाई भी बात सुनने को तैयार ही नही हुआ, तब आखिर अवधेश हारा-थका पुन अपने घर की तरफ लौट चला। घर पर अन्दर प्रविष्ट न होकर अवधेश बाहर स्थित चबूतरे पर ही बैठ गया और विश्रान्ति लेने लगा। ठीक इसी समय शहर के प्रतिष्ठित व्यक्ति श्रेष्ठीवर्य श्री खुशालचन्द, उसी रास्ते से गुजर रहे थे। उन्होने जब अवधेश को इस प्रकार देखा तो पूछ ही लिया अरे अवधेश, सुस्त क्यो बैठा है? आज तो तुझे बहुत दिनो से देख रहा हू। क्या बात है आजकल दुकान पर नही बैठते हो? क्या तबियत ठीक नही है? सुस्त दिखलाई देते हो और उस आलीशान भवन को छोड कर इस खण्डहर को निवासगृह क्यो बना रखा है।

श्रेष्ठीवर्य श्री खुशालचन्द के प्रश्नो की लम्बी शृखला का अवधेश ने एक ही जवाब दिया कि श्रीमान्! मैं अब सुधेश भैय्या से अलग रहने लगा हू। तो सेठ खुशालचदजी बोले क्या तुम्हे पैतृक सपत्ति का आधा हिस्सा नही मिला। अवधेश का सक्षिप्त उत्तर था—नही मिला। खुशालचन्द जी ने कहा—ऐसा नही हो सकता। तुम्हारे पिता के साथ मेरी दोस्ती थी। उन्होने मुझे मृत्यु पूर्व ही सब कुछ बतला दिया था। सारी सपत्ति के दो भाग भी कर दिये थे। अत तुम्हारी सम्पत्ति का एक हिस्सा आज भी सुधेश के पास सुरक्षित होगा। जिस पर की तुम्हारा अधिकार है, अत तुम जाकर अपने हिस्से की सम्पत्ति सुधेश से ले सकते हो। अवधेश ने कहा—नही मुझे कोई अपेक्षा नही है। मै तो इसी प्रकार के जीवन मे मस्त हू। मै भाई का किसी भी प्रकार से दिल दुखाना नही चाहता

हूं । श्रेष्ठी खुशालचन्द जी ने समझाया—अरे भोले ! इसमें क्या दिल दुखता है । वह सपति तो तुम्हारी ही है । चलो हम तुम्हारे साथ चलते है । हम कह कर तुम्हे सपत्ति दिलवा देगे । तुम्हारे पिता ने जा कर्त्तव्य हम पर सौपा है, हम उसे जरूर पूरा करना चाहते है । अनचाहे भी एक बार फिर अवधेश को सेठ खुशालचन्द जी के साथ सुधेश की दुकान पर जाना पडा । दूर से ही अवधश और कुशालचदजी को आते देखकर सुधेश को स्थिति समझते देर नही लगी । दुनियादारी के बीच रह कर सुधेश बहुत कुछ छल-कपट करना सीख गया था । उसके हृदय का भ्रातृ प्रेम सूख गया था, क्योकि चद-चादी के टुकडो का महत्त्व ही उसके विचारो मे घूम रहा था ।

व्यावहारिक तौर पर सुधेश ने सेठ खुशालचन्द जी का स्वागत किया, उन्हे सम्मान के साथ बिठाया पर जब सेठ खुशालचन्द जी ने अवधेश के हिस्से की बात कही और हिस्सा देने को कहा तब सुधेश ने स्पष्ट शब्दो मे बतलाया--अवधेश की पैतृक-सपत्ति जो कुछ थी, वह मैं इसको पढाने-लिखाने मे तथा विवाह-शादी मे लगा चुका हू । अब मेरे पास इसकी सपत्ति का कोई भी भाग अवशेष नही रह गया है । आज जितना कुछ मैं बढा हू, वह सब मेरे स्वय के परिश्रम का फल है। जिसमे अवधेश का कोई हिस्सा नही रह जाता। अत अब पिता की सपत्ति का हिस्सा मागने का अवधेश को कोई भी अधिकार नही है।

खुशालचन्द जी के बहुत कुछ समझाने पर भी सुधेश ने हिस्सा तो दूर कुछ रुपये देना भी मजूर नही किया । आखिर दोनो को खाली हाथ ही सुधेश की दुकान से बाहर निकलना पडा । खुशालचन्द जी ने अपनी तरफ से अवधश

का रुपये लेने का आग्रह किया पर स्वाभिमानी अवधेश ने एक पैसा लेना भी मजूर नही किया। इस अभावपूर्ण स्थिति मे भी उसके मन मे किसी भी प्रकार के अन्यथा विचार नही उठे।

अवधेश ने, न तो अपने भाई के प्रति गलत विचार किया और न ही मुनिराज के प्रति ही कुछ सोचा कि मुझे कैसा व्रत दिलवा दिया कि प्रतिज्ञा लेते ही मैं तो मुसीवत मे फस गया। प्रतिज्ञा नही ली तब तक तो जगल मे सूखे-वृक्ष प्रचुर मात्रा मे थे और ज्यो ही प्रतिज्ञा ली तो सूखे-वृक्ष ही गायब हो गए।

ऐसा वैसा कुछ न सोच कर अवधेश, जब अपने घर पर पहुचा तो उसने यामिनी को सारी स्थिति से अवगत कराया। यामिनी ने पति को साहस बधाते हुए उनके क्रिया-कलापो की प्रशसा की और समझाया. नाथ! सब दिन एक समान नही होते है। समय की गति के साथ ही व्यक्ति के जीवन मे भी नये-नये मोड आते रहते है। इस लिये जो अवस्था हमारी आज है, वह कल रहे, यह जरूरी नही। अत हमे अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रहना है। हो सकता है अगली मजिल ही अपने को शुभ फल देने वाली हो, इसलिये जब तक शक्ति रहे तब तक पुरुषार्थ करते रहना चाहिये। नाथ! यद्यपि आज आप बहुत थक चुके है किन्तु फिर भी थोडा साहस और करे, जगल मे खोज जरूर करे कि सूखे वृक्ष है या नही।

पत्नी के मधुर शब्दो को सुन कर अवधेश मे विशिष्ट

शक्ति का संचार हुआ। उसने कहा—अच्छा प्रिये ! मैं आज फिर जगल मे जाऊगा। जब तक मेरे मे दम-खम है, मै कभी पुरुषार्थ नही छोडूगा। पति की साहसपूर्ण वाणी सुन कर यामिनी पुलकित हो उठी।

कुछ ही समय की विश्रान्ति के बाद अवधेश पुन. जगल की ओर बढ चला। आज उसके निराहार के रूप मे तीसरा दिन था। जगल मे बढता ही चला गया, बढता ही चला गया। पर उसे कही भी सूखा वृक्ष देखने को नही मिला। जिधर देखो उधर हरे ही हरे वृक्ष दिखलाई दे रहे थे। घण्टो घूमने के बाद भी जब उसे एक भी सूखा वृक्ष दिखलाई नही दिया तो वह एकदम थक गया। भूख के कारण आखो मे अधेरा छाने लगा, चक्कर आने लगे। ऐसी परिस्थिति मे भी हरे वृक्ष काटने की बात तो दूर उसके मन मे कल्पना भी नही आई कि हरे वृक्ष काटे जाय। जो प्रतिज्ञा ले ली, उसे प्राणपन तक निभाना अवधेश के व्यक्तित्व का एक अभिन्न अग बन चुका था।

जगल के बीच हरे वृक्ष की छाव मे एक देवालय नजर आया। आज वह घर से यह निर्णय ही लेकर निकला था कि घर तभी जाना, जब कुछ मिल जाय। बिना कुछ मिले तो घर जाना था नही, इसलिये वह देवालय के चबूतरे पर आकर बैठ गया और सोचने लगा कि क्या करना चाहिये। क्या पुन मजदूरी करने लग जाऊ जिससे उदरपोषण हो सके। पर मजदूरी करने जितनी शक्ति भी तो नही रही है। तीन दिन का निराहार होने से मै मजदूरी कर नही

सकता और विना मेहनत के मैं भोजन लेना नही चाहता । ऐसी स्थिति मे क्या किया जाय ?

अवघेश की विचारधारा चल ही रही थी कि कैसे क्या किया जाय—जिसमे प्रामाणिक तरीके से उदरपूर्ति हो सके । इसी बीच उसके मन मे विचार आया कि जो पैसे इकट्ठे किये थे, वह तो मैंने घर को ठीक करने मे लगा दिए पर आज भी मेरे पास कुल्हाडा और रस्सी तो है ही। क्यो न इन्हे बेच कर एक टाइम की भोजन सामग्री खरीद ली जाय । खाने के वाद कुछ कुछ शक्ति आने पर मजदूरी करके, उदरपोपण कर सकूगा । ज्यो ही अवघेश का हाथ कुल्हाडे पर गया, त्यो ही उसकी दृष्टि देवालय के कपाटो पर पडी उन्हे देखते ही उसके मन मे एक विचार कौधा—अरे ! देवालय के लिए कपाट की क्या आवश्यकता । देव स्वय शक्तिमान हैं । वे अपनी रक्षा स्वय कर सकते हैं । यदि वे अपनी रक्षा भी स्वय नही कर सकते तो वे देव ही क्या ? अत देवालय के लिये कपाट निरर्थक है । यह सोच कर अवघेश ने देवालय के कपाट तोडने की सोची और वह अपने विचारो को क्रियान्वित करने के लिये तैयार हो गया ।

(८)

ज्यो ही अवघेश ने, देवालय के कपाट पर कुल्हाडे की चोट मारी, त्यो ही आकाशवाणी हुई, अरे अवघेश ! तुम देवालय के कपाट क्यो तोड रहे हो ? ये कपाट तोडना तुम्हारे लिये हित कर नही होगा । आकाशवाणी सुन कर

अवधेश एक बार स्तब्ध रह गया। पर उसमें न मालूम कहा से ऐसा अनूठा जोश उभर आया था कि वह निडरता के साथ बोला—हे देव! कपाट नही तोडू तो फिर क्या करू, मैं और मेरी धर्मपत्नी तीन दिन से भूखे है। एक दाना भी खाने को नही मिला। मैंने हरे वृक्ष नही काटने की प्रतिज्ञा ले रखी है और जब से मैंने प्रतिज्ञा ली है, तभी से इस जगल मे सूखे वृक्ष दिखलाई ही नही दे रहे हैं। तीन दिन हो गए खोज करते, पर सूखे वृक्ष कही दिखलाई नही दिये। लगता है तुम इस जगल मे रहते हो और तुम्हारे कारण ही यह सब कुछ हुआ। इसलिये मैं अब तुम्हे नही छोडने वाला, मैं मर जाऊगा पर हरे वृक्ष तो नही काटूगा, तुम्हारे इस देवालय के कपाट सूखे है, इसलिये इन्हे छोडूगा भी नही। इन्हे लेकर ही जाऊगा। यह कहते हुए अवधेश ने कुल्हाडे की एक चोट कपाट पर और मार ही दी। देव, जिसका नाम सोमदेव था, बोला—देखो इन कपाटो को तोडने से तुम्हे मिलेगा क्या? एक दिन की मजदूरी मिल सकती है। कल तो फिर वैसे के वैसे रहोगे। कुछ भी हो आज तो मैं इन्हे छोडूगा नही—अवधेश ने कहा। तब सोमदेव ने देखा वस्तुत इसकी धर्म के प्रति निष्ठा है। प्राण चले जावे पर यह अपनी प्रतिज्ञा को तोडने के लिये तैयार नही है। जब महा साधक ने इसे प्रतिज्ञा दिलाई, तब मैं उसी वृक्ष पर अदृश्य रूप मे बैठा, सब कुछ सुन रहा था। मैंने सोचा—इन अनगारो का यही काम है, खुद तो सब कुछ छोड-छाड कर आ गए हैं और दूसरा कोई आगन्तुक इनके सम्पर्क मे आता है तो उसे भी यही समझाते रहते हैं और कुछ न कुछ त्याग दिलाते

रहते हैं। इस गरीब लकडहारे को भी हरे वृक्ष काटने का त्याग दिला दिया। अब यह प्रतिज्ञा का पालन करेगा या नही। इस ओर ध्यान नही देते। मैं ऐसा काम करू कि पहले इस लकडहारे की प्रतिज्ञा तुडवा दू। जब यह प्रतिज्ञा तोड दे तब जाकर इन महात्मा को भी बतला दू कि इस प्रकार की प्रतिज्ञाए टिकती नही हैं।

यही सोच कर मैंने अपनी दैविक शक्ति से इस जगल के जितने भी सूखे वृक्ष थे, उन्हे हरे-हरे रूप मे बदल दिये। ताकि सूखे वृक्षो के अभाव मे अवधेश को उदरपूर्ति करने के लिए हरे वृक्ष काटने ही पड़ें। पर आश्चर्य है अवधेश अपनी प्रतिज्ञा पर अटल है। आज इसे तीन दिन हो गए है। इन तीनो दिनो मे एक दाना भी इसे खाने को नही मिला। भयकर मुसीबतो का सामना करना पडा तो भी यह अपनी प्रतिज्ञा पर अटल है। आज भी इसे मर जाना पसद है पर प्रतिज्ञा तोडना अभीष्ट नही। कितने साहस के साथ यह मेरी बात का जवाब दे रहा है। ऐसे साहसी, व्रतनिष्ठ व्यक्ति का मैं कुछ नही बिगाड सकता। दैविक शक्ति भी उसके सामने परास्त हो जाती है।

देव के विचारो मे परिवर्तन आने लगा—अब उसके मन मे उन कनक-काता के त्यागी महायोगी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा भाव जागृत हुए, साथ ही वह अवधेश की प्रतिज्ञा से बहुत प्रभावित हुआ। देव के कानो मे ये शब्द गूजने लगे— महाप्रभु ने सत्य कहा है देवा वि त नमसति जस्स धम्मे 'सयामणो। जिस व्यक्ति का मन अहिसा-सयम-तपरूप धर्म

मे लगा रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते है। क्योकि दैविक शक्ति भी आत्मिक शक्ति के सामने कुछ नही कर सकती। जहा आत्मा की शक्ति मजबूत है, वहां दैविक शक्ति झुक जाती है।

प्राणपण से प्रतिज्ञा पालन करने की निष्ठा के कारण अवधेश की आत्मा मे एक प्रवल तेज जागृत हो गया। जिसके सामने मेरा तेज निस्तेज है। यह मेरे लिये नमस्करणीय है।

सोमदेव ने कहा—अवधेश! मैं तुम्हारी प्रतिज्ञा पालन की इस निष्ठा से बहुत प्रभावित हूं। वस्तुत तुम देवताओ के लिए भी नमस्करणीय हो। आत्मतेज के सामने दैविक शक्ति भी परास्त हो जाती है। मै आज तुम पर बहुत खुश हू। मागो, जो तुम्हारी इच्छा हो। मैं इच्छित वस्तु देने के लिये तैयार हूं। क्योकि देवदर्शन कभी खाली नही जाते।

देव द्वारा वरदान मागने की खुली छूट होने पर अवधेश के मन मे आकाक्षाओ ने जन्म नही लिया, क्योकि वह जानता था कि जिसके पास एक फूटी कोडी भी नही है, यदि उसे ऐसा वरदान मिल जाय तो उसका मन सारे ससार की सपत्ति पाने को तैयार हो जाता है, पर इससे उसे सुख नही मिल सकता। अवधेश ने उन नरपुगव से एक बार सुना था कि मानव की इच्छा अमरबेल की तरह बढती ही चली जाती है। जिस प्रकार अमरबेल जिस वृक्ष पर रहती है, उसके रस को चूस कर वृक्ष को सुखा देती है।

]

वैसे ही इच्छाएं भी आत्म-वृक्ष पर रह कर आत्मिक गुणों को सुखा डालती है। इच्छाओ के वशीभूत आज का मानव बहुत कुछ पाकर भी दुखी ही बनता जा रहा है। अवधेश के मस्तिष्क मे उन महापुरुष के वचन आज भी तरोताजा थे। अत वह विचार करने लगा कि जितनी सपत्ति मागी जाएगी, उतना ही मेरा लोभ भी बढता चला जाएगा। लोभ के वश मे होकर दिन रात उसी चक्कर मे भटकता रहूगा। तब जो सुख मैं पाना चाहता हू वह प्राप्त नही कर सकूगा। क्योकि आज मुझे बडे २ धनपति भी दुखी ही नजर आ रहे है। यह सोच कर उसने इतना ही कहा कि तुम अपनी माया समेट लो। बस मुझे तो सूखा काष्ठ चाहिए। उससे मैं अपनी आजीविका चला लूगा और मुझे कुछ नही चाहिये। देव ने कहा—ऐसा नही हो सकता। माया तो मैं समेट ही रहा हू, पर तुझे कुछ मागना भी पडेगा। देव के अधिक आग्रह करने पर अवधेश ने इतना ही कहा कि यदि तुम देना ही चाहते हो तो बस मुझे केवल इतना ही चाहिये, मैं जो भी प्रतिज्ञा लू, उसका दृढता से पालन कर सकू और धन मे सतोष से बढकर के धन नही बतलाया है—'सतोष परम धनम्' अत मेरे जीवन मे सदा सतोष बना रहे। इसके अतिरिक्त मुझे कुछ नही चाहिये।

अवधेश के मुख से निकल रही आत्म तेज से परिपूरित वाणी को सुनकर देव अत्यन्त प्रभावित हुआ और बोला—वत्स! इसकी तो तुम्हारे मे कोई कमी नही। व्रतपालन करने मे और सतोष के साथ जीवन का निर्वाह करने मे तुम खुद समर्थ हो। यह सामर्थ्य मैं नही दे सकता।

देव भौतिक संपत्ति-वैभव दे सकता है। पर आत्मिक वैभव तो स्वय को जागृत करना होता है।

तब मुझे और कुछ नही चाहिये जिसकी मुझे अपेक्षा है, वह आप नही दे सकते तो अन्य वस्तुओ की मुझे उतनी अपेक्षा नहीं है।

अवधेश की बात को सुन कर फिर आकाशवाणी हुई और देव बोला—वत्स ! तुम बहुत उन्नत हो। ऐसे मानवो के कारण ही मानव जीवन को देवो से भी उन्नत बतलाया है। यह सत्य है कि तुम कुछ नही चाहते हो, पर मैं तुम्हारी सहायता करना चाहता हू। मेरे कारण ही तुम्हे इतने कष्ट देखने पडे। तीन दिन तक भूखा भी रहना पडा। और अब कुछ भी लिये बिना जाओगे तो यह मेरे लिये उचित नही है। अवधेश बोला—देवराज ! मेरे लिये तो आपकी शुभ दृष्टि ही बहुत हैं। इसके अतिरिक्त मुझे और कुछ भी नही चाहिये। मै पराश्रित रहना नही चाहता। क्योकि पराश्रित व्यक्ति कितना ही कुछ प्राप्त कर ले, पर आत्मिक–शाति प्राप्त नही कर सकता। मैं अपने पुरुषार्थ पर ही विश्वास रखता हू। अपने पुरुषार्थ के बल पर पाया गया—यत्‌किंचित् थोडा-सा भी अपने आप मे सतोष–सुख देने वाला होता है। इसलिये आप कृपा करे और यदि कुछ करना ही चाहे तो असहाय–अपग लोगो की सहायता करे। देव के बहुत कुछ समझाने पर भी अवधेश नही माना और बिना कुछ चाहे ही गन्तव्य की ओर बढ चला। अवघश ज्यो ही देवालय से चलने लगा त्यो ही उसने देखा कि सर्वत्र सूखे ही सूखे झाड नजर आ रहे हैं।

]

लेकिन तीन दिन का भूखा होने से, वृक्ष काटने की उसमें ताकत नहीं रही थी पर उसने देखा कि कई सूखी लकडिया जगल मे बिखरी पडी है। सोचा चलो इन्हे ही एकत्रित कर लू। यह सोचकर इधर-उधर बिखरे काष्ठ-खण्डो को एकत्रित कर अवधेश चल पडा शहर की ओर।

शहर के किसी भी बाजार मे वह चला जाता है तो सारा बाजार खुशबू से भर जाता है। लोग सोचने लगे कि यह खुशबू कहा से आ रही है। खोज करने पर ज्ञात हुआ कि अवधेश के पास जो काष्ठ खण्ड है, उसकी ही इतनी खुशबू आ रही है। अहो! तब तो यह काष्ठ निश्चित ही चन्दन के है। यह जानकार चन्दन-काष्ठ के व्यापारी अवधेश के पीछे लग गए और कहने लगे कि यह काष्ठ हमे बेच दो। बहुत से व्यापारी होने से सभी अपनी-अपनी बात कहने लगे—एक बोला—मैं इसके दस हजार रुपये देता हू, तुम ये सब काष्ठ मुझे दो। तो दूसरा बोला—नही मैं बीस हजार देने के लिए तैयार हू, ये काष्ठ मुझे दो तो तीसरा तीस हजार देने का वादा करने लगा। इस प्रकार उन व्यापारियो मे परस्पर प्रतिस्पर्धा चलने लगी।

यह सब देख कर अवधेश विचार करने लगा कि यह सब क्या हो रहा है। क्या बात है—ये लोग इस कदर इस काष्ठ को लेने के लिए पीछे क्यो पडे हैं। तब उसकी दृष्टि और विचार काष्ठ की तरफ गए तो उसका नाक भी सुगध से भरने लगा, उस सुगध को पाकर अवधेश ने विचार किया, अहो! तो यह बात है—मेरे पास के काष्ठ खण्ड कोई साधारण नही अपितु चन्दन के हैं। अब तक तो मैं

विचारो मे कितना खोया हुआ था कि मुझे यह ज्ञात हो नही हो सका कि ये काष्ठ खण्ड साधारण नही अपितु चन्दन के है । जब अवधेश अच्छी तरह समझ गया कि मेरे पास के काष्ठ खण्ड चन्दन के है तब उसने उन चन्दन के व्यापारियो को समझाया—देखो भाइयो ! मै ये काष्ठ खड बेचने के लिए ही लाया हू पर मै आप मे से किसी एक व्यापारी को नही बेचू गा, थोडा-थोडा सभी को विक्रित करू गा, ताकि किसी को दु.ख न हो और मूल्य भी, बाजार मे जो इसका मूल्य चल रहा है, उससे दस प्रतिशत कम लू गा । यह सुन कर सभी व्यापारी शात हो गए और अवधेश ने बाजार कीमत के अनुसार, उसमे दस प्रतिशत कम करके सभी व्यापारियो को चन्दन काष्ठ बेच दिये । इस विक्रय से उसे बीस हजार रुपये प्राप्त हुए । उन रुपयो मे से कुछ रुपयो से आवश्यक भोजन सामग्री खरीद कर अवधेश घर पर पहुचा । यामिनी कभी से अवधेश का इन्तजार कर रही थी, वह भी आज तीन दिन की भूखी थी । पति को दूर से आता हुआ देख कर पुलकित हो उठी और उनका स्वागत करने के लिए द्वार पर चली आई । उन्हे साथ लेकर घर मे प्रविष्ट हुई ।

दोनो उपखण्ड मे पहुचे और अवधेश ने यामिनी को भोजन सामग्री के साथ अवशेष रुपये सम्भालते हुए सारी स्थिति से अवगत कराया । सब कुछ सुन कर यामिनी बोली—पतिदेव ! आपने देव से कुछ नही मागा, यह तो अच्छा ही किया, पर लगता है देवता ने आपकी परोक्ष सहायता की है । तभी आपको चन्दन के काष्ठ प्राप्त हो

गए। वस्तुत हुआ भी यही था, क्योंकि देव ने देखा कि अवधेश मुझ से तो कुछ लेने वाला नहीं है और मैं इसे कुछ देने के लिये मना भी नहीं सका। तो मुझे इसकी अप्रत्यक्ष सहायता करनी चाहिये। इसीलिए उसने अपनी माया समेट कर इन वृक्षों को पुन यथावस्थित रूप से बना दिये। पर जब अवधेश उन्हें काटने में समर्थ नहीं हुआ तो काष्ठ खण्ड बिखेर दिये। जिन्हें ही लेकर अवधेश चल पड़ा और वे ही काष्ठ खण्ड चन्दन के निकले। कैसे भी हो अब अवधेश के पुण्योदय हो गया। बिना पुण्योदय के तो देवता भी सहायता नहीं कर सकते। पुण्योदय होने पर ही देवता का निमित्त मिल सकता है। दुःख के बादल छटते-छूटते चले गए। पुण्येन्दु का शीतल प्रकाश अवधेश और यामिनी के जीवन में टपकने लगा। दोनों ने आज तीन दिन के बाद भोजन किया और अपनी मर्यादा पालन की दृढ़ता से सन्तुष्टि की अनुभूति की। पानी में पड़े तेल के एक टपके की तरह अवधेश के पुण्योदय ने उसका समूचा जीवन ही बदल दिया। अब जिस किसी व्यापार को वह हाथ में लेता बस उसकी सामग्री खरीदने के बाद ही उस वस्तु का मूल्य एकदम बढ़ जाता, ऐसे अवधेश को व्यापार में दुगुना-तिगुना लाभ होने लगा। सतोषी अवधेश रोज व्यापार करने भी नहीं जाता। घर से बाहर भी बहुत नहीं निकलता। कभी-कभी ही बाहर आता था। इस प्रकार दोनों बड़े आनन्द से रहने लगे। यामिनी के भी विशेष कुछ काम नहीं रह गया था और अवधेश के तो था ही नहीं। दोनों के दिन आनन्द के साथ व्यतीत होने लगे।

अजी सुनते हो । ऐसा सबोधन करते हुए भामिनी ने सुघेश से कहा—मालूम है तुमको, तुम्हारे भाई अवधेश को जब से अलग किया है, तब से प्रारम्भ मे तो वह मजदूरी करके पेट भरता था । बाद मे वह कुल्हाडा रस्सी खरीद कर जगल से लकडियां काट कर लाता और उन्हे बेचने पर जो कुछ मिलता, उससे अपना पेट भरता, पर अब....इसी बीच खीझता हुआ सधेश बोल पडा । अब तुम्हे फिर क्या हो गया है । उसे अलग करने पर भी तुम्हे चैन नही पड़ रहा है । अब वह करे सो करने दो । तुम उधर क्यो झाकती हो और फिर मेरा भी माथा चाटती रहती हो । इधर तो दिन भर व्यापार मे माथा पचा कर आता हू और जब यहा आता हू तो तुम्हारी जुबान, जो चालू होती हैं तो बद ही नही होती । मैं दो चक्को के बीच जैसे दाना पिसता है, वैसे पिसता चला जा रहा हू । तुम्हारे लिये इतना सब कुछ करता हू, इतना सोना-चांदी इकट्ठा कर दिया—पर तुम्हे सतोष कहा । हर वक्त दूसरो की तरफ झाकती रहती हो । वह क्या करता है, वह क्या करता है ? और साथ ही मुझे भी तग करती रहती हो । कहा तो अवधेश की पत्नी यामिनी, जो कितनी सुशीला एव सहनशीला तथा प्रसन्न वदना है जिससे उसके पास कुछ भी न होते हुए भी वे कितने प्रसन्न रहते है और कहा तुम हो जो तुम्हारे पास इतना सब कुछ होते हुए भी तुम सुख मे दो जून रोटी भी नही खिला सकती ।

जब भी सुघेश घर पर आता तो कुछ न कुछ बात को लेकर भामिनी के साथ खटखट हो जाती । रोज-रोज किच-किच मे तग आकर सुधेश ने आज भामिनी को सुना

हो दिया । पर भामिनी तो आज कुछ और ही सोच कर आई थी । सुधेश से इतना सब कुछ सुनकर भी आज उसे जरा भी दुःख नही हुआ, रोष नही उभरा । पर वह अपने शब्दो मे कुछ और अधिक मधुरता लाती हुई बोली— प्राणनाथ ! आप जो कुछ कहते हैं, वह ठीक है । मैं जो बतला रही हू, उससे अपनी सब किच-किच ही बद हो जाएगी । जरा आप मेरी बात ध्यान से सुन ले और उसके अनुसार कुछ पुरुषार्थ करे तो सदा के लिये झझट समाप्त हो जाएगी । फिर न मुझे कुछ सीना-पिरोना पडेगा और न आपको ही व्यापार धधा ही करना पडेगा । दोनो मे अमन चैन की बशी बजेगी ।

- - -

सुधेश बोला—अच्छा तो बता, क्या तुम्हारे पास कोई जादुई डडा आ गया है या तुम्हे कोई यक्षाधिष्ठित जिन–चिराग मिल गई है जिससे कि हर मनोकामना पूरी हो सके । अगर बिना कुछ करे–धरे ही सब कुछ हो जाय तो फिर कोई कुछ करेगा ही नही ।

भामिनी ने समझाया—नाथ ! जरा आप मेरी बात थोडी सुनने की कोशिश कीजिये । आप मेरी बात को मजाक मे न लेकर गम्भीरता से लीजिये आज जो बात मैं बतलाने जा रही हू, वह सुनने मे तो मात्र कल्पना की उडान ही नजर आती है । वस्तुत वह कल्पना नही, सच्चाई है ।

(अनमने भाव से) अच्छा तो कहो, कहो, क्या बात है—सुधेश ने भामिनी से कहा ।

अजी सुनते हो। ऐसा सबोधन करते हुए भामिनी ने सुधेश से कहा—मालूम है तुमको, तुम्हारे भाई अवधेश को जब से अलग किया है, तब से प्रारम्भ मे तो वह मजदूरी करके पेट भरता था। बाद मे वह कुल्हाडा रस्सी खरीद कर जगल से लकडिया काट कर लाता और उन्हे बेचने पर जो कुछ मिलता, उससे अपना पेट भरता, पर अब....इसी बीच खीझता हुआ सधेश बोल पडा। अब तुम्हे फिर क्या हो गया है। उसे अलग करने पर भी तुम्हे चैन नही पड़ रहा है। अब वह करे सो करने दो। तुम उधर क्यो झाकती हो और फिर मेरा भी माथा चाटती रहती हो। इधर तो दिन भर व्यापार मे माथा पचा कर आता हू और जब यहा आता हू तो तुम्हारी जुबान, जो चालू होती है तो बद ही नही होती। मैं दो चक्को के बीच जैसे दाना पिसता है, वैसे पिसता चला जा रहा हू। तुम्हारे लिये इतना सब कुछ करता हू, इतना सोना-चादी इकट्ठा कर दिया—पर तुम्हे सतोष कहा। हर वक्त दूसरो की तरफ झाकती रहती हो। वह क्या करता है, वह क्या करता है ? और साथ ही मुझे भी तग करती रहती हो। कहा तो अवधेश की पत्नी यामिनी, जो कितनी सुशीला एव सहनशीला तथा प्रसन्न वदना है जिससे उसके पास कुछ भी न होते हुए भी वे कितने प्रसन्न रहते हैं और कहा तुम हो जो तुम्हारे पास इतना सब कुछ होते हुए भी तुम सुख से दो जून रोटी भी नहीं खिला सकती।

जब भी सुधेश घर पर आता तो कुछ न कुछ बात को लेकर भामिनी के साथ खटखट हो जाती। रोज-रोज किच-किच से तग आकर सुधेश ने आज भामिनी को सुना

ही दिया । पर भामिनी तो आज कुछ और ही सोच कर आई थी । सुघेश से इतना सब कुछ सुनकर भी आज उसे जरा भी दुख नही हुआ, रोष नही उभरा । पर वह अपने शब्दो मे कुछ और अधिक मधुरता लाती हुई बोली—प्राणनाथ ! आप जो कुछ कहते हैं, वह ठीक है । मैं जो वतला रही हूं, उससे अपनी सब किच-किच ही बद हो जाएगी । जरा आप मेरी वात ध्यान से सुन लें और उसके अनुसार कुछ पुरुषार्थ करें तो सदा के लिये झझट समाप्त हो जाएगी । फिर न मुझे कुछ सीना-पिरोना पडेगा और न आपको ही व्यापार धधा ही करना पडेगा । दोनो मे अमन चैन की वशी वजेगी ।

सुघेश वोला—अच्छा तो वता, क्या तुम्हारे पास कोई जादुई डडा आ गया है या तुम्हे कोई यक्षाविष्ठित जिन–चिराग मिल गई है जिससे कि हर मनोकामना पूरी हो सके । अगर विना कुछ करे–धरे ही सव कुछ हो जाय तो फिर कोई कुछ करेगा ही नही ।

भामिनी ने समझाया—नाथ ! जरा आप मेरी वात थोडी सुनने की कोशिश कीजिये । आप मेरी वात को मजाक मे न लेकर गम्भीरता से लीजिये आज जो वात मैं वतलाने जा रही हू, वह सुनने मे तो मात्र कल्पना की उडान ही नजर आती है । वस्तुत वह कल्पना नही, सच्चाई है ।

(अनमने भाव से) अच्छा तो कहो, कहो, क्या वात है—सुघेश ने भामिनी से कहा ।

भामिनी बोली—नाथ ! कुछ दिन से मैं देख रही हूं कि आपके भाई अवधेश मजदूरी करने या लकडी काटने कही पर नही जाते है । यामिनी भी कोई विशेष काम नही करती है । दोनो दिन भर बैठे-बैठे मजे से वाते करते है और हुष्ट-पुष्ट होते जा रहे हैं । मैने सोचा—आखिर वात क्या है ? इनके पास एक पैसा भी तो नही है, जिसके वल पर ये बिना कुछ किये खा पीकर मौज उडा सके और अवधेश, चोर उचक्का भी नही है, जिससे कि चोरी करके माल इकट्ठा कर सके । फिर बात क्या है ? मैंने जव इस वात की खोज की तो कुछ बातें मुझे जन-प्रवाद से जानने को मिली । सेठ कजोडीमल जी पत्नी से देव की वात चलने पर एक दिन कह रह रही थी कि भामिनी ! तुम्हारे देवर पर तो लगता है, जगल का सोमदेव मेहरबान हो गया है। उसी का परिणाम है, वह मालामाल हो गया है । तब मैंने पूछा—अरे सेठानी देवकी ! ऐसा क्या हुआ जिससे देव मेरे देवर पर मेहरबान हो गया । तब देवकी बोली—देख मुझे भी पूरा पता नही है, हा लेकिन मैंने कठियारे से सुना था कि वह घर जब लकडिया देने आया तब कह रहा था कि एक दिन अवधेश से सोमदेव ने बात की थी और देव ने उसे कुछ भी मागने को कहा । लेकिन उसने कुछ भी नही मागा और बिना कुछ मागे ही वहा से चल पडा । उसी के बाद अवधेश मालामाल हो रहा है । लगता है, देव उसकी सहायता कर रहा है । ऐसी ही बात एक दिन अपने पास के बिहारीलाल जी की पत्नी गुणवती भी कह रही थी । यह सब सुनने के बाद भी जब मुझे विश्वास नही हुआ तो तब मैने सीधा यामिनी से सम्बन्ध जोडने की

सोची। और मौका पाकर एक दिन यामिनी के घर पहुंच ही गई। उसने मेरा वहुत अच्छा स्वागत किया। मैंने कहा--तुम तो जव से गई हो तभी हमको तो एकदम भूल ही गई हो। वापस कभी आई ही नही। मैंने सोचा तुम न आओ तो कोई वात नही, आखिर मैं तो वडी हू, मुझे तो जाना ही चाहिये। यही सोच कर आज मैं समय निकाल कर तुम्हारे पास सुख-शाति के समाचार पूछने चली आई। आजकल देवरजी भी दिखाई नही देते। पहले तो बाजार मे जाते थे तो यदा-कदा मैं उन्हे देख लेती थी, पर इन दिनो तो देवर जी को न तो वाजार जाते देखा और नही जगल जाते देखा। क्या वात है—उनका स्वास्थ्य अच्छा नही है? उन्हे कुछ दिनो तक न देखने के कारण मुझे चिन्ता हो गई। सोचा कही उनका स्वास्थ्य विगड तो नही गया। मेरा कर्त्तव्य हो गया—उनके स्वास्थ्य के विषय मे जानकारी लेना। इन दोनो ही कारणो से आज मैं तुमसे मिलने आई हू। वोलो कैसे क्या हाल-चाल है? नि सकोच वतलाओ।

नाथ! वह यामिनी मेरी वातो मे आ गई और कहने लगी—जेठानी जी, आप तो महान् है, आपकी महानता का क्या वखान करू, आपने जो कुछ हमारे ऊपर उपकार किये है, उसे हम भूल नही सकते। यहा पधार कर आपने इस खण्डहर को पवित्र कर दिया। फरमाइये, मैं आपकी सेवा मे क्या हाजिर करू? आपके देवरजी का स्वास्थ्य वहुत अच्छा है। हम दोनो आपकी कृपा से वहुत सुख मे है। हमे किसी प्रकार की कोई तकलीफ नही है। तव मैंने वात को कुछ नया मोड देते हुए यामिनी से पूछा, तो दिवरानी जी, जव ऐसा है तो देवर जी वाजार नही आते

ग्रौर जगल मे भी लकडी काटने क्यो नही जाते। इन दिनों मे वे घर पर ही कैसे है ? बिना कुछ करे—धरे तो उदर-पूर्ति कैसे हो सकती है ? यदि तुम्हे कुछ चाहिए तो मुझे कहो।

मेरी इन चिकनी-चुपडी बातो मे ग्राकर भोली यामिनी ने ग्राखिर मुझे बतला ही दिया कि जेठानी जी ! ग्रब ग्रापके देवर जी को कोई विशेष व्यापार करने की जरूरत नही है। मैंने बीच मे ही कहा—देवरानी ! यह कैसे ? ग्ररे बिना कमाए कोई पेट भरता है ? तो देवरानी बोली—जेठानी जी, हमारे यहा तो ऐसा ही होने लगा है, यह सब सोमदेव की कृपा है।

यह सुनकर मै एकदम चौकी ग्रौर उसे प्रेम से पूछा—देवरानी ! यह सोमदेव कौन है ? क्या कोई हमारा कुलदेव है या ग्रौर कोई ? ग्रौर उसकी ग्राप लोगो पर मेहरबानी क्यो हो गई, जिससे देवरजी को कुछ कमाना नही पडता। तब यामिनी बोली, जेठानी जी ! यह सब ग्रापके देवरजी के प्रबल पुण्य का ही परिणाम है कि ग्राज हम ग्रत्यन्त सुख मे रह रहे है। यह तो ग्रापको मालूम ही है कि हमारे पास कुछ नही था। ग्रापके देवरजी ने मेहनत-मजदूरी करके ग्रपना ग्रौर मेरा उदरपोषण किया। कुछ समय बाद वे जगल मे लकडी काटने जाने लगे। वहा उन्हे एक महात्मा मिल गए। उनसे उन्होने हरी लकडी काटने के त्याग कर लिये ग्रादि-ग्रादि। जैसी घटना ग्रवधेश ने यामिनी को बतलाई थी, यथावत् वैसी ही घटना यामिनी ने भामिनी को बतलाई। तब मुझे ग्रवधेश के नही कमाने

का रहस्य ज्ञात हुआ । यामिनी को तो समझाकर वहा से तो चली आई पर नाथ ! आपसे निवेदन करती हू कि आप भी थोडा ऐसा पुरुषार्थ करे कि जिससे अपने को भी, बैठ-बैठे खाने को मिल सके। फिर अपने मे भी कोई सघर्ष नही रहेगा। आप हाथ मे कुल्हाडा एव रस्सी लेकर जगल मे उस देवालय के पास जावे और वहा अवघेश की तरह कुछ समय विश्रान्ति करने के बाद आप भी उस किवाड पर कुल्हाडे का प्रहार करे । कपाट पर कुल्हाडे का बार-बार वार करने से सोमदेव आपको भी यदि वरदान मागने को कह देवे तो आप क्या मागेगे? आपका भाई तो भोला एव नासमझ है । जिस कल्पवृक्ष से बहुत कुछ मागा जा सकता था, उस कल्पवृक्ष तुल्य देव के सामने जाकर भी कुछ नही मागा । लेकिन नाथ, आप तो उनसे विश्व की सर्वाधिक सम्पत्ति मागें, जिससे कि अपना ठाठ-बाठ किसी राजा-महाराजा मे कम न हो । जरा एक बार आपको थोडा परिश्रम करना होगा और एक रस्सी और कुल्हाडा लेकर जगल मे जाना होगा और जैसा अवघेश ने किया है, वैसा ही करना होगा ।

सुघेश ने गुस्से मे आकर कहा—अरे मायाविनी, क्या अब मुझे मजदूर बनाएगी और लकडी काटने जगल मे भेजेगी । मेरे कमाने का यही फल है कि तुम मुझ से मजदूरी कराओ । यह सब शेखचिल्ली की बाते मैं नही करता । हुआ होगा अवघेश के यहा ऐसा । उसके पास यामिनी लक्ष्मी है, जिसके पुण्य प्रबल हैं । और मेरे यहा तो ईर्ष्या एव द्वेष की पुतली कर्कशा नार है, जिसके कारण एक मिनिट भी शाति से मैं जी नही पाता हू । पति के द्वारा

इस प्रकार जली-कटी सुन कर के भी भामिनी पीछे नही हटी । आज तो मानो वह निर्णय लेकर आई थी कि कैसे भी हो पति को जगल मे भेजने के लिये मजबूर करना ही है । भामिनी ने कहा नाथ ! रोज-रोज की बात नही है, केवल एक दिन की बात है । मेरी बात मान लीजिये । फिर यह रोज-रोज की किच-किच समाप्त हो जाएगी । अपन बहुत आनन्द मे रहेगे । आखिर भामिनी के सामने सुघेश ने सभी शस्त्र डाल दिये और बोला—तेरी जैसी औरत मुझे मिली है तो मुझे सब कुछ करना ही पडेगा । कम्पनी सरकार के सामने झुकना ही पडता है । आज के व्यक्ति बडे-बडे लोगो के सामने अकड सकते है, पर वे ही कम्पनी सरकार—पत्नी के सामने झुक जाते हैं । सुघेश बोला—ठीक है अभी तो रात हो रही है—कल सवेरे ही मैं देवालय जाने का विचार रखता हू ।

सुघेश का यह निर्णय सुन कर भामिनी अत्यन्त प्रसन्न हो गई और बोली—नाथ ! मुझे आप से यही आशा थी । भामिनी को अभी से ही लगने लगा मानो उसने युद्ध मे बहुत बडी विजय प्राप्त कर ली हो । आज उसने विशेष प्रकार से भोजन तैयार किया और दोनो ही साथ बैठ कर भोजन करने लगे । भोजनोपरात दोनो प्रेम से वार्तालाप करने लगे । भामिनी भविष्य का कल्पित जीवन बतलाने लगी, नाथ ! जब अपने पास अरबो की सम्पत्ति हो जाएगी तब राजा-महाराजाओ से भी अच्छा रमणीय महल बनाएगे । अपनी सेवा मे सैकड़ो नौकर-चाकर खडे रहेगे । देश-विदेश की नई पोशाके पहनेगे । लोगो को ऐसा लगने लगेगा कि सुघेश के घर मे तो स्वर्ग ही उतर आया हो । इस

प्रकार की वातें करते-करते सुघेश और भामिनी दोनों ही निद्राधीन हो गए ।

(१०)

भामिनी के आज जागृत मस्तिष्क मे कल्पनाए बहुत तेजी से आ रही थी इसी का परिणाम यह आया कि उसका अजागृत अस्तिष्क भी तेजी से दौडने लगा। निद्राधीन होते ही वह स्वप्न ससार मे पहुच गई । स्वप्न मे उसने देखा—सुवह-सुवह ही मजदूर का वेष बना कर सुघेश कधे पर कुल्हाडा और हाथ मे रस्सी लेकर भामिनी से यह कह कर निकल पडा कि मुझे जोर से भूख लग रही है–रसोई वनाकर जल्दी जगल मे लेते आना । भामिनी बोली—आप चलें मैं अभी भोजन लाती हू । पर मेरी बात का विशेष ध्यान रखना ।

सुघेश चलने लगा, जगल की ओर । रास्ते में जो कोई उसे देख लेते तो उन्हें आश्चर्य हुए बिना नही रहता और वे वोल पडते—अहो ! सुघेश सेठ, आप और यह वेष ! कहा जा रहे हैं ? लकडी काटने ? लाखो के मालिक आपको लकडी काटने की क्या आवश्यकता पड गई । यह काम तो मजदूरो का है ! आदि-आदि

विचारा सुघेश किस-किस का जवाब देता । वह तो उन लोगो की बातें सुन-सुन कर शर्म से पानी हो गया । सोचने लगा कहा फस गया मैं । इस कर्कशा नार ने मुझे कहा फसाया है ? इन लोगो के सामने मेरी इज्जत मिट्टी

में मिला दी । जिन्होंने भी मुझे देखा है, वह जाकर बाजार के अन्य लोगो को भी कहेगे । सब की दृष्टि मे मैं गिर जाऊंगा । मेरे व्यापार की उन्नति गिर जाएगी । अब क्या करू मैं, बिना कुछ किये वापस घर चला जाऊगा तो घर मैं भी महाभारत छिड जाएगा । अब तो आगे चलना ही पडेगा । विचारो की इसी उधेडबुन में सुधेश आगे बढता चला गया । बढते-बढते आखिर वहा पहुच गया, जहा देवालय बना हुआ था । उसको देख कर उसने अपने आप से तर्कणा की, हा देवालय तो यही लगता है जिसके लिये भामिनी ने बतलाया था । सुधेश, देवालय के बाहर चबूतरे पर पहुचा और भामिनी के बतलाए अनुसार कुछ देर तक चबूतरे पर विश्रान्ति ली और फिर उठा और कुल्हाडे को लेकर देवालय के कपाट पर प्रहार करने लगा । ज्यो ही देवालय के कपाट पर सुधेश ने कुल्हाडा मारा त्यो ही आकाश मे घोर-गर्जना हुई– कौन दुष्ट है, जो अपने जीवन का विचार किये बिना कपाट पर कुल्हाडा मार रहा है । मैं अभी उसे मार कर यमलोक पहुचा दू गा । यह कर्णकटु आकाशवाणी सुन कर सुधेश तो एकदम घबरा गया । उसके सारे शरीर मे कप-कपी छूट गई । शरीर मे पसीना-पसीना होने लगा । भय और उद्विग्नता के कारण उसकी बोलती बद हो गई । वहा से भागने की हिम्मत कर हटने की कोशिश की तो लगा—कुल्हाडा कपाट से चिपक गया और उसके हाथ कुल्हाडे की पकड से चिपक गए हैं और पैर जमीन से चिपक गए हैं । यह अनुभव करके तो उसके छक्के ही छूट गए । अहो, मैं किस चक्कर मे फस गया । गया तो था चौबे जी से छबे जी बनने, पर छबे जी बनने की बात तो दूर यहा पर तो दुबे जी की जैसी स्थिति भी

उफ्फ मैं सोच भी नही सकता कि मेरी नीचता कहां से कहा वढ चुकी थी। और जब अवधेश को लेकर सेठ खुशालचन्द जी मेरी पेढी पर आए तो वहा से भी उन्हें निकाल दिया। यह सब दृश्य उसके मस्तिष्क मे चित्रपट की भाति एक के बाद एक उभर ही रहे थे कि इसी वीच फिर आकाश मे घोर गर्जना हुई और सुधेश को सुनने को मिला–क्यो दुष्ट! तुमने यह हिम्मत कैसे की कपाट को तोडने की। क्या तुम्हे मालूम नही, देवो की अचिन्त्य शक्ति होती है, जिसकी साधारण मानव तो कल्पना भी नही कर सकता।

धूजता-धूजता, कापता-कापता सुधेश वोला, देवराज! मुझे माफ कर दो, मैं भामिनी के कहने से यहा आ गया हू, अब एक वार छोड दो, वापस ऐसा अपराध नही करुगा। फिर आकाशवाणी हुई--बता, किसलिये तुमने कपाट को तोडने का दुस्साहस किया था। देवराज! कापते हुए स्वरो मे सुधेश वोला–आपने जो कृपा मेरे भाई अवधेश पर की उसे देखकर मैं भी आपसे कुछ मागने के लिये आया हू। आकाशवाणी हुई--अरे नासमझ इन्सान। तेरा भाई अवधेश कितना सरल, सदाचारी, प्रामाणिक, व्रतनिष्ठ एव आत्मबली है, जिसे अपने व्रत की सुरक्षा के लिये प्राण देना मजूर था, पर व्रत तोडना, उसे किसी भी हालत मे मजूर नही था। उसके आत्मतेज के सामने तो हमारा देव-तेज भी फीका पड गया। उसकी शक्ति के सामने हमारी दैविक शक्ति निस्तेज हो गई। कहा तो वह अवधेश और कहा तू। जिसमे छल–कपट, ईर्ष्या, अतुच्छस्वार्थ, जिसके पीछे कृत्य-

लेकर चल पडी जगल की ओर जहा सोमदेव का मन्दिर था और जहा उसके पति पहले से ही गए हुए थे ।

अरे यह क्या ? मेरे पति तो कपाट पर कुल्हाडा लगाए हुए ही हैं । क्या अभी तक ये कुल्हाडा ही मार रहे थे ? सोमदेव ने इनको वरदान नही दिया ? बात क्या बात है? दूर से अपने पति को कपाट के पास खडे देखकर भामिनी विचार करने लगी । पास मे जाकर जब उसने सुघेश से पूछा तो वह पहले से ही गुस्से मे भरा भामिनी को पास मे देखते ही भभक उठा—अरे कुलच्छनी ! यह सब तेरी ही करतूत है । आज तेरे कारण ही मैं बडी मुसीबत मे फस गया हू । तेरे ही कारण मैं आज मृत्यु के मुह मे पडा हू । मैंने पहले ही कहा था—यदि ऐसे पैसे मिल जाय तो फिर सभी श्रीमत हो जाएगे, कोई गरीब रहेगा ही नही । पर तेरे माथे मे तो लोभ का भूत सवार था । तू कहा मानने वाली थी मेरी बात, आखिर तेरी बातो मे आकर मैंने अपनी जिन्दगी का मौत के कगार पर ला खडा किया । न मालूम क्या-क्या सुघेश, भामिनी को सुनाता ही चला गया । जिसके मन मे ताश के पत्तो से बने महल की तरह कल्पनाओ का सुन्दर महल बन चुका था जो कि हवा के झोके से ही बिखर गया, जो सुख की कल्पनाओ मे डूबी थी । जिसे अपना भविष्य, सुखमय प्रतीत हो रहा था ऐसी भामिनी ने जब पति के मुख से ऐसे कर्णकटु वाक्य सुने तो वह एकदम स्तब्ध रह गई है । अरे यह क्या ? मैंने क्या सोचा था और यह क्या हो गया । भामिनी बोली—अरे इतना चिल्ला क्यो रहे हो । कपाट से हटते क्यो नही ? क्या सोमदेव ने आपको वरदान नही दिया ?

सुघेश चीखलाया—वरदान जाय जहन्नुम मे, मेरे तो जीवन के ही लाले पड रहे हैं और तेरे को वरदान की लगी है। दिखता नही है मेरे हाथ कपाट से चिपक चुके है और मेरे पैर धरती से चिपक चुके हैं। घण्टो हो गए कोशिश करते-करते, पर एक इच भी हिल नही पाया हू। यह सब उस सोमदेव का वरदान है। जिससे तुमने बहुत कुछ चाहा था, उसी ने यह हालत बना रखी है।

अरे तो क्या सोमदेव ने आपकी ऐसी हालत बना दी है ? तब तो बडा गजब हो गया। अब क्या होगा। कैसे मैं अपने पति को स्वतन्त्र बनाऊ ? चाहा तो क्या था पर हो क्या गया ? इस प्रकार सोचती हुई घबराती हुई भामिनी, सुघेश के पास जाकर उसे पकड कर छुडाने का प्रयास करने लगी। पर एक और चमत्कार घटित हुआ। ज्यो ही भामिनी ने सुघेश को छुडाने के लिये पकडा, त्यो ही वह भी सुघेश के चिपक गई। अब तो और भी बुरा हुआ दोनो परस्पर झगडने लगे। जगल मे आने-जाने वाले लोग इन्हे देख देखकर व्यग्य करने लगे। वाह-वाह कैसी जोडी चिपक गई है। ये धन के लोभी। जिन्होने अपने भद्रिक भाई को कुछ भी न देकर धक्के मार कर घर से निकाल दिया और अब वह जब आराम से रहने लगा तो उसका आराम भी इन्हे नही सुहाया और सोमदेव से बहुत धन लेने की लालसा से यहा चले आए। देव भी ऐसे दुष्ट व्यक्तियो को वरदान नही देता है। उनकी ऐसी ही दुर्गति करता है। जो कुकर्म किये हैं, उनका फल भोगे बिना छूट नही सकते। देव भी अच्छो को अच्छा और बुरे को बुरा फल देता है। व्यक्ति जैसा कर्म करेगा, उससे विपरीत

तो देव भी फल नही दे सकता। प्रवल पुण्यशाली है तो उसे देव दु खी नही वना सकता और यदि प्रवल पापकर्म का उदय है तो उसे कोई सुखी नही वना सकता। आज हमे यह सब देखने को मिल रहा है। धनी मानी सुधेश की यह स्थिति प्रत्यक्ष दिख रही है। इस प्रकार लोग परस्पर चर्चा करते जा रहे थे। एक सुज्ञ व्यक्ति ने यह सव देखकर स्पष्ट शब्दो मे कहा कि महाप्रभु ने सत्य कहा है—

अट्ठो अणट्ठकर। लोहो सव्व विणासणो।

अर्थ अनर्थकारी है और लोभ सभी गुणो का विनाश करने वाला है। यह बात सुधेश और भामिनी के जीवन मे प्रत्यक्ष देखने को मिल रही है। अर्थ के पीछे सुधेश ने क्या-क्या अनर्थ नही किये। भाई के साथ कैसा दुर्व्यवहार किया और लोभ का जब अतिरेक हुआ तो चले आए दुनिया भर की सम्पत्ति पाने सोमदेव के पास। पर इन्हे मालूम नही, लोभ सभी गुणो का विनाश करने वाला है। आखिर लोभ के वशीभूत होकर दोनो ही कपाट के चिपके हुए हैं।

घण्टो इसी प्रकार चिपके रहने से उनकी हालत बडी ही दयनीय बन चुकी थी। दोनो बड ही कातर स्वर से सोमदेव की प्रार्थना करने लगे। हे कृपालु देव। हमे कुछ नही चाहिये। आप कृपा करके जीवन दान दे दीजिये। बन्धन से मुक्त कर दीजिये। आपकी बडी कृपा होगी। यह सब हमने ईर्ष्या के वश किया था, जिसका परिणाम हम भुगत ही रहे है।

आकाशवाणी हुई—नही, अब मैं जल्दी से तुम्हे छोडने

यदि तुम्हें छूटना ही है तो मेरी दो शर्तों को मानना होगा, बोलो है मजूर ?

सुवेश और भामिनी एक साथ बोले—हां मंजूर है, आप बतलाइये । देव ने स्पष्ट किया—पहली शर्त तो यह कि अवधेश के हिस्से मे पिता की जितनी भी सम्पत्ति आती हो, वह सारी की सारी ब्याज सहित, उसे ससम्मान लौटा दो और दूसरी शर्त यह है कि तुम्हारी पत्नी भामिनी ने भी सदाचारिणी, सुशील यामिनी पर कम अत्याचार नही किये। खुद तो आराम करती थी और दिन भर यामिनी से काम करवाया करती थी। इतना ही नही काम करवाकर उसे दिल को चुभने वाले व्यग्य सुनाया करती थी । यामिनी ने तो सब कुछ सहन कर लिया पर न्याय के दरबार मे तो सच्चा न्याय होता है । इसलिये भामिनी ने जो यामिनी को कष्ट दिये हैं, इसके लिये अब वह प्रति दिन दोनो टाइम स्वादिष्ट भोजन तैयार करके यामिनी के यहा पहुचाती रहे तो तुम दोनो की मुक्ति हो सकती है, बोलो है मजूर ?

मरता क्या नही करता । सुवेश और भामिनी को देव की बात माननी ही पडी । दोनो ही बोले—हे देव । आपकी दोनो ही शर्ते मजूर हैं । बस हमे छोड दो, घर जाते ही सारी व्यवस्था कर देंगे ।

देव ने स्पष्ट किया—देखो जैसा कह रहे हो, वैसे ही जाकर पूर्ण करना है । ऐसा नही हो कि यहा हा भर ली और यहा से छूटते ही प्रतिज्ञा तोड बैठो । अगर थोडी-सी भी चालाकी करने की कोशिश की तो वही हाथ-पैर चिपक

जायेंगे, फिर छूटने वाले नही है । इस बात का ध्यान रखना ।

जब सुषेण और भामिनी ने सोमदेव को पूर्ण विश्वास दिलाया तब ही वे मुक्त हो पाए और हारे हुए जुआरी की तरह निराश—हताश हो घर की तरफ बढ चले ।

ठीक इसी समय घडियाल की टन-टन-टन की आवाज सुन कर भामिनी एकदम चौक कर उठ बैठी और देखा कि क्या बात है । कुछ देर बाद उसे ज्ञात हुआ कि वह तो नीद मे थी । उसने जो कुछ देखा—किया, वह तो एक स्वप्न था । स्वप्न की कल्पना भी अब उसे प्रकम्पित करने लगी । क्या ऐसा भी हो सकता है ? सोमदेव हमारे साथ ऐसा व्यवहार करेगा ? अहो, तब तो बहुत बुरा होगा । यदि स्थिति ऐसी है तो फिर देव के पास जाना ही नही चाहिए । पर देव ने जो दो शर्ते स्वप्न मे मजूर कराई यदि उनका पालन नही किया गया तो हो सकता है सोमदेव साक्षात् ऐसा कर बैठे । यदि ऐसा कुछ हो गया तो जीना ही दुर्लभ हो जाएगा । हमे देव की ये शर्तें मान ही लेनी चाहिये । उसने तुरन्त अपने पति को जगाया और स्वप्न की स्थिति मे अवगत कराया । तब सुषेण ने कहा मैंने पहले ही कहा था—देव यदि ऐसे वरदान देने लग जाय तो फिर सभी धनवान हो जाएगे । पर तू ने मेरी बात नही मानी और ईर्ष्या के वश होकर जो काम करने का निर्णय लिया, उसका परिणाम स्वप्न मे ही स्पष्ट हो गया है । अब देव के सकेत के अनुसार मुझे अवधेश को ब्याज सहित आधा हिस्सा और तुझे प्रतिदिन भोजन खिलाना ही होगा । यदि ऐसा

नही किया गया तो सोमदेव कुछ भी कर सकता है।

भामिनी का सारा जोश, पानी-पानी हो गया। चाहा कुछ और ही था, हुआ कुछ और ही। आम को चाहने वाला यदि अमरूद का बीज बोए तो आम फल नही पा सकता।

आज सुधेश और भामिनी को यह मालूम हो गया था कि अन्त मे इन्सानियत की ही जीत होती है। व्यक्ति कितना ही कुछ कर ले, सत्य-सत्य ही रहता है।

(११)

सुधेश ने अपनी सारी चल-अचल सम्पत्ति के बराबर दो विभाग किये और एक भाग के सारे कागज लेकर स्वय ही अवधेश के खण्डहर-मकान मे पहुचा। भाई साहब को आते हुए देखकर अवधेश अत्यन्त प्रसन्न हो गया। अहो, आज भाई सा स्वय पधारे है। वह उठा और भाई सा का स्वागत करने के लिये उनके सामने गया। प्रणाम किया और उन्हे ससम्मान भीतर ले आया। दोनो मे परस्पर औपचारिक वार्तालाप हुआ। तदनन्तर सुधेश ने अवधेश के हिस्से आने वाली चल-अचल सम्पत्ति के कागजात सामने रख दिये हैं। तुम ये कागज देख लो, इसके अलावा भी कोई वस्तु अवशेष रह गई हो तो बतलाओ, मैं वह भी सहर्ष देने के लिये तैयार हू।

भाई की इस उदारतापूर्ण बात को सुन कर अवधेश ने कहा—भाई साहब। हिस्सा करने की क्या आवश्यकता

है। मुझे तो सम्पत्ति की कोई आवश्यकता नही है। दो टाइम भोजन चाहिये वह तो मुझे मिल ही जाता है। इसलिये यह सम्पत्ति आप ही रख लीजिये। पर अब सुघेश कहा मानने वाला था। पहले तो उसने विना कुछ किये अवघेश और यामिनी को घर से विदा कर दिया था और अब अवघेश का हिस्सा दिये विना घर से जाने को भी तैयार नही है। इसके पीछे उसकी स्वेच्छा नही, देव का आतक काम कर रहा था। सुघेश ने कहा, अवघेश ऐसा नही हो सकता। जो सम्पत्ति तुम्हारे हिस्से मे आई है, वह तुम्हे लेनी ही होगी। मैं उसे ले नही सकता। मैं एक तरफ वडे-वडे भवनो मे रहू और पचासो नौकर मेरी आज्ञा मे खडे रहे और मेरा ही भाई इस टूटे-फूटे खण्डहर मे रहे, यह शोभास्पद नही है। इसलिये तुझे अपनी सम्पत्ति का विभाग तो लेना ही होगा। मैं सम्पत्ति का विभाग दिये विना यहा से जाने वाला नही हू। भाई के इस अटल आग्रह के सामने अवघेश को झुकना पडा और उसे कागज लेने ही पडे। कागज के साथ अवघेश के हिस्से की सारी सम्पत्ति उसे सुपुर्द कर सुघेश अपने स्थान चला गया।

दूसरे दिन सवेरे ही दूध-चाय, नाश्ता तैयार होने पर भामिनी ने सबसे पहले अवघेश और यामिनी के लिये एक टिफिन मे भरपूर नाश्ता लिया और स्वय ही चल कर यामिनी के यहा पहुच गई और यामिनी से बोली—देवरानी जी, तुम तो घर से जाने के बाद कभी पुन आई ही नही। इतनी क्या बावली हो गई हो। खैर, तुम नही आई सो मैं ही चली आई। तुम्हारे लिये और देवरजी के लिये गर्म-गर्म नाश्ता लेकर आई हू, इसे ग्रहण कर लो। यामिनी

को आश्चर्य होने लगा—अहो, आज भामिनी मे इतनी उदारता कहा से आ गई । कल तक तो वह कितना झगडा किया करती थी और आज इतनी वदल गई कि नाश्ता देने चली आई । खैर, कुछ भी हो, इनके जीवन मे वहुत वडा परिवर्तन आया है । कल जेठ जी भी पतिदेव को उनके हिस्से की सम्पत्ति के कागज दे गए थे और सम्पत्ति भी उनके अधिकृत कर दी थी और आज भामिनी नाश्ता लेकर चली आई है । भामिनी की उदारता चाहे किसी भी रूप मे थी पर भद्रिक यामिनी ने उसे सही रूप मे ही लिया और प्रेम तथा सम्मान देते हुए बोली—जेठानी जी । आपने इतनी तकलोफ क्यो उठाई । हम तो लूखी-सूखी ही मस्ती से खा लेते हैं । हमे कोई तकलीफ नही है । आपकी कृपा से हम बहुत खुश है । आपकी इस उदारता एव मेहरबानी का मैं किन शब्दो मे शुक्रिया अदा करू । मेरे पास शब्द नही है पर आप कृपा करके यह सब ले जाइये—हमे इनकी आवश्यकता नही है । पर भामिनी कहा मानने वाली थी । उस पर भी तो सुधेश की तरह स्वप्न मे आए देव का आतक मडरा रहा था । देव के ये शब्द—'थोडी-सी भी चालाकी की तो वही पैर चिपक जाएगे...' उसके मन मे अभी भी कप-कपी पैदा कर रहे थे । भामिनी का अपनी इच्छा से तो यहा आने का प्रश्न ही नही उठता और फिर नाश्ता देने की तो कल्पना भी नही की जा सकती । उसकी अपनी इच्छा से तो वह इधर देखना भी पसन्द नही करे । यह तो देव का दबाव था कि आज वह दौडी हुई यामिनी के घर आई और नाश्ता लेने का आग्रह करने लगी, कहने लगी यह तो तुमको लेना ही पडेगा । मैं और तुम कोई दो नही हैं । आज ही क्या, देवरजी और तुम्हारे लिये तो मैं रोज ही दोनो टाइम

भोजन भी पहुचा दूगी । अगर तुमने जरा भी इन्कार कर दिया तो मेरा दिल टूट जायेगा । यदि तुम्हारा मेरे पर स्नेह है तो फिर ये सब रख लो ।

भामिनी के इस स्नेह भरे आग्रह को यामिनी टाल नही सकी और नाश्ता रख लिया । अवधेश और यामिनी दोनो ही बड़े प्रेम से भोजन करने लगे । भामिनी का यह प्रतिदिन का क्रम बन गया कि सुबह और शाम भोजन तैयार होते ही यामिनी के वहा पहुचा देना । इधर यामिनी और अवधेश का जीवन शाति के साथ व्यतीत होने लगा । जिन्दगी की अनेक दूरिया वे निरन्तर नजदीक करते चले जा रहे थे ।

(१२)

टूटे-फटे खण्डहर के स्थान पर अत्यन्त दर्शनीय-रमणीय महलनुमा भवन खडा हो गया । जिसकी शानी का दूसरा भवन पूरे मेदनीपुर मे नही था । ऐसे चित्ताकर्षक भवन को आज विशेष रूप से सजाया-सवारा गया था । भित्ति-चित्र इतने सुन्दर बनाए गए थे, मानो वे सजीव हो । भवन को देश-विदेश के शिल्पकारो द्वारा इस तरह से तराशा गया था कि वह देखते ही बनता था । आज के रोज तो भवन को और भी विशेष रूप से सुन्दरता के साथ सजाया था । स्थान-स्थान पर वदनवारे लगाई गई थी । कही विविध रूपो मे सजी बालाए नृत्य कर रही थी तो कही विविध वेश पहने महिलाए गायन गा रही थी । नगर के धनी मानी, श्रेष्ठीवर्यो का तो वहा ताता-सा लगा

हुआ था । सभी के हाथ अच्छे से अच्छे उपहारों से भरे थे । उन सबके बैठने के लिये भवन के विशाल ऊपखण्ड के हॉल मे सुन्दर व्यवस्था कर रखी थी । सभी उसमे प्रवेश कर अपना-अपना स्थान ग्रहण कर रहे थे । उस हॉल की कारीगरी तो और भी विचित्र और विलक्षण प्रकार की थी । सारे भित्ति-चित्र सोने की स्याही से कोरे गए थे । हॉल के ऊपर लटकने वाले कगूरे, स्वर्ण जटित हीरो के थे । नीचे बिछा हुआ मखमली कालीन भी विशेष तौर पर तैयार किया हुआ होने से अत्यन्त ही सुन्दर था । हॉल की सजावट इतनी सुन्दर थी कि देखने वालो की अखिया चौंधिया जाती थी । हॉल मे भौतिकता का वैभव इस कदर बिखरा पडा था कि उसके मालिक के पास कितना धन होगा, इसकी कल्पना भी करना मुश्किल था । नगर के बडे-बडे श्रेष्ठी भी इस वैभव को देख कर अत्यन्त आश्चर्यमग्न थे । अहो, वास्तव मे धन तो हमारे पास मे भी है पर इतना और ऐसा उपयोग नही ।

खुशालचन्द सेठ भी सभी प्रकार से सुसज्जित होकर हाथ मे एक बहुमूल्य अच्छा-सा उपहार लेकर घर से बाहर निकले ही थे कि बसतपुर निवासी धनी मानी श्रेष्ठीवर्य श्री हजारीमल जी उनसे मिलने के लिये आ पहुंचे । उन्हे आया हुआ देख कर सेठ खुशालचन्द जी बहुत प्रसन्न हुए और उनका स्वागत किया । हजारीमल जी ने पूछा—मित्र। आज इस प्रकार सज-धज कर उपहार लिये कहा जाने की तैयारी कर रहे हो । सेठ खुशालचन्दजी बोले—अरे आज तो मैं एक नव युवा श्रेष्ठी के पुत्रोत्सव के समारोह मे जा रहा हू । हजारीमल सेठ चौंके—बोले यह नव युवा सेठ

आते हैं, तब रंक भी राजा बन जाता है और जब पाप कर्म उदय मे आते है तो राजा भी रक बन जाता है।

जब सुधेश ने इसे घर से बाहर निकाल दिया तो यह उस खण्डहर के उपखण्ड को साफ करके अपनी पत्नी के साथ मे वही रहने लगा। मजदूरी करके उदरपूर्ति करने लगा आदि सारे घटनाक्रम से सेठ खुशालचन्द ने सेठ हजारीमल को अवगत कराते हुए आगे बतलाया कि जब पिता की सपत्ति का आधा हिस्सा इसे मिल गया तब इसने अपने खण्डहर मकान को ठीक कराने की कोशिश की। ज्यो ही मकान की दीवारे गिराई गई तो उसमे से लाखो स्वर्ण मोहरें निकल पडी। क्योकि दीवारो के अन्दर पैतृक सपत्ति थी, जिसका किसी को पता नही था। और जब खण्डहर को पूरा भूमिसात कर नया भवन बनाने के लिये नीव खोदी गई तो अन्दर से अनेक सोने के चरु-कलश, हीरे-पन्ने-माणक मोतियो से भरे निकले। इस प्रकार जिसके कुछ नही था, वह अरबो को सपत्ति का मालिक बन बैठा। लेकिन खासियत इस बात की है कि इतनी सपत्ति मिल जाने पर भी इसे जरा भी अभिमान नही। चाहे कोई गरीब हो या अमीर, सभी के साथ प्रेम पूर्ण व्यवहार करता है। उसी नवयुवा सेठ ने फिर यहा व्यापार प्रारम्भ किया तो वह जो व्यापार करे उसमे लाभ ही लाभ। वर्तमान मे उसकी पचासो पेढिया हैं। हजारो नौकर काम कर रहे हैं। सव जगह वहुत अच्छा व्यापार चल रहा है। उसी नवयुवा सेठ ने अत्यन्त रमणीय चित्ताकर्षक भवन बनाया है। जिसकी वनावट एव शिल्प के सामने बडे-वडे राजा-महाराजाओ के महल भी फीके लगते हैं।

आज उनके यहा पुत्रोत्सव मनाया जा रहा है। इसके लिये शहर भर के सभी भाई-बहिनो को भोजन का आमत्रण मिला है। मैं भी उपहार लेकर अभी वही जा रहा था।

अरे-अरे कही यह नवयुवा सेठ वही तो नही है, जिनकी यामिनी अवधेश भण्डार के नाम से फर्म चलती है। सेठ हजारीमल जी ने ये शब्द, सेठ खुशालचन्द से सब कुछ सुनकर कहे थे। हा हा वही 'यामिनी अववेश' के नाम से जितनी भी पेढिया हैं, वे सब इस नवयुवा सेठ की ही है। सेठ खुशालचन्द जी ने यह कहते हुए सेठ हजारीमलजी को आगे यह बतलाया कि ये नवयुवा सेठ जिनका नाम सेठ अरपण जी है, इन्होने एकदम अभाव अवस्था भी देखी थी और अब श्री सपन्न अवस्था तो देख ही रहे है। अपनी सपत्ति का उपयोग अधिक से अधिक परमार्थ के कार्यों मे करते है। इन दो-तीन वर्षो मे ही मेदिनीपुर मे अनेक धर्मशालाए, पाठशालाए, अस्पताल आदि जो सार्वजनिक भवन निमित हुए है उन सबका निर्माण इन्ही नवयुवा सेठ ने करवाया है। यही नही हजारो असहाय लोगो को रहने के लिये स्थान, पहनने के लिये कपडे एव खाने के लिये भोजन दिया। शहर भर के अभावग्रस्त बच्चो को खाने-पीने, पढने-लिखने की सुविधाए दी है। पूरे मेदिनीपुर शहर की काया ही पलट दी। आज आपको यहां पर एक भी भिखारी नही मिलेगा। सभी की आवश्यकताओ की पूर्ति कर उन्हे मानवता एव नैतिकता से जीना सिखाया है। इसीलिये आज मेदिनीपुर के निवासियो मे मानवता एव नैतिकता के गुणो का विकास हुआ है। इन सब का

श्रेय नवयुवा सेठ अवधेश जी को ही जाता है। आज शहर का बच्चा हो या बूढा, कोई भी क्यो न हो सब उन्हे आदर की दृष्टि से देखते हैं। पूरा शहर आज उनके पुत्र जन्म की खुशिया मना रहा है। अब मै भी वही जा रहा हू अगर आप भी चले तो आपका भी उन नवयुवा सेठ से मिलना हो जाएगा।

सेठ हजारीमल जी बोले—जरूर, जरूर ऐसे नवयुवा सेठ को तो मैं भी देखना चाहूगा। ऐसे उदारहृदयी व्यक्ति तो दुनिया मे विरले ही मिलते है—जो सपत्ति को जोडते नही अपितु परमार्थ मे लगाते है। वस्तुत ये सब के लिये प्रेरणास्रोत है। चलिये मैं भी आपके साथ ही चलता हू।

सेठ खुशालचन्द जी के साथ ही सेठ हजारीमल जी भी अच्छा-सा उपहार लेकर एक सुन्दर बग्घी मे बैठ कर सेठ अवधेश जी के भवन की ओर चल पडे। ज्यो ही नवयुवा सेठ का भवन देखा तो वह बाहर से ही इतना सुन्दर था कि वे तो उसकी सुन्दरता ही देखते रह गए। अब तक भवन के अन्दर बाहर नर-नारियो का एक सैलाब-सा लग गया था। सभी के मुख से नवयुवा सेठ अवधेश जी की प्रशसा ही सुनने को मिल रही थी। नगर निवासी अपने आप मे गौरव की अनुभूति कर रहे थे कि हमारे नगर मे ऐसे धनी मानी और उदारहृदयी सेठ है, जिनकी दृष्टि मे नगर के सभी लोग उनके परिवार के है।

सेठ खुशालचन्दजी एव हजारीमल जी ने भवन के विशाल हॉल मे प्रवेश किया और यथा स्थान बैठ गए।

सेठ हजारीमलजी तो भवन की शोभा देखते ही दग रह गए। वाह, क्या भवन बनाया है। सभागृह कितना रमणीय है। सही अर्थो मे लक्ष्मी का दान और उपभोग तो सेठ अवधेश जी कर रहे हैं। छोटी-सी उम्र मे कितना विकास किया। सम्पत्ति मे ही नही जीवन से भी आगे बढे है। अधिकतर तो यही देखा जाता है कि जो सम्पत्ति से आगे बढे होते हैं, उनमे सौजन्यता की कमी आ जाती है। बहुत कम श्रेष्ठी मिलते हैं जो गरीबो को आत्मीयता दे पाते है। लेकिन सेठ अवधेश जी ने तो धन के साथ ही समस्त मानवो के साथ आत्मीयता का गहरा सम्बन्ध स्थापित किया है।

एक नीतिकार ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है—

यौवन धन सम्पत्ति, प्रभुत्वमविवेकता।
एकैकमप्यनर्थाय, किमु यत्र चतुष्टयम् ॥

यौवन, धन, सम्पत्ति और अविवेक इनमे से एक-एक भी अनर्थ कारक है तो जहा चारो ही है, वहा के अनर्थ का तो कहना ही क्या। सेठ अवधेश जी युवान भी हैं तो धन सम्पत्ति के निधान भी। किन्तु सब कुछ होते हुए भी उनका विवेक प्रबल है। वे अपने विवेक शक्ति के साथ सभी को समतोल बनाए हुए हैं। इसीलिये युवा वय मे भी उनके यश की ध्वजा-पताका चारो दिशा मे फैल रही है।

शहर के सभी श्रेष्ठीवर्यो का जब हॉल मे आगमन हो चुका तब ठीक समय पर अवधेश एव उनकी पत्नी दामिनी अर्थात् एक आदर्श दम्पति सभी प्रकार से सुसज्जित

हो एक शिशु को गोद मे लिये हॉल मे प्रवेश करते हैं। अवधेश एव यामिनी ने आगन्तुक सभी लोगो का हाथ जोड कर स्वागत किया। मेहमानो ने भी हर्षध्वनि के साथ अपनी प्रसन्नता की अभिव्यक्ति दी। सभी के यथास्थान बैठने के बाद अवधेश और यामिनी भी श्रेष्ठ आसन पर बैठ गए थे।

सुधेश और भामिनी आज कार्यो मे अत्यन्त व्यस्त थे। सुधेश ने अवधेश को जब सम्पत्ति का आधा हिस्सा दिया तब भी अवधेश उसे लेने को तैयार नही था। किन्तु सुधेश के आग्रह से लेना पडा और उसके बाद जब उस खण्डहर से निधान मिला तो वह दौडा-दौडा अपने भाई के पास गया और उसे खण्डहर मे लाकर वह निधान दिखलाया तथा उसे लेने को भी कहा। लेकिन देव से आतकित और अब तो अपने छोटे भाई के जीवन से प्रभावित हो जाने से सुधेश उस सम्पत्ति को लेने के लिये तैयार नही हुआ। जब से भामिनी को स्वप्न आया था, तभी से सुधेश के जीवन मे आश्चर्यजनक परिवर्तन आ गया था, वह भी अवधेश की तरह ही मृदु स्वभावी, न्याय प्रिय, मानवीयता के गुणो से ओत-प्रोत बन गया। भामिनी का चरित्र भी एकदम बदल चुका था। उसमे भी शील-सम्पन्नता, दया, आत्मीयता आदि जो एक सन्नारी मे गुण होने चाहिये वे उभरने लगे थे।

अवधेश ने आग्रह किया था कि यह सम्पत्ति अपने ही मकान मे निकली है। अत इस पर आपका और मेरा समान अधिकार है। मुझे तो सम्पत्ति की आवश्यकता है

नही । इसीलिये आप ही सारी सम्पत्ति अपने उपयोग मे ले लीजिये । किन्तु सुघेश इसके लिए तैयार नही हुआ । तब अवधेश ने कहा—आप अपना हिस्सा तो ले ही लीजिये । तब सुघेश इसके लिये भी तैयार नही हुआ तो अवधेश, उस सम्पत्ति को ठोकर मारते हुए सुघेश के चरणो मे गिर कर—भैया ! जो सम्पत्ति भाई-भाई मे विग्रह पैदा कर दे, वह किस काम की । यदि यह सम्पत्ति आपको और मुझे परस्पर मिलने के लिए रोकती है तो मुझे ऐसी सम्पत्ति की आवश्यकता नही है । मै तो आपके साथ ही रहूगा । आखिर अवधेश ने सुघेश को मना ही लिया । सुघेश और अवधेश की सम्पत्ति एक करके उनका सारा कार्यभार अवधेश ने सुघेश को सौप दिया । अवधेश और यामिनी भी पहले की तरह ही अब भी आनन्द से रहने लगे थे । धन-वैभव, सम्पत्ति के बीच रह कर भी वे उससे बहुत दूर थे । दोनो भाइयो मे अत्यन्त आत्मीयता हो गई थी । दोनो एक दूसरे के लिये सब कुछ न्योछावर करने को तैयार रहते थे । सुघेश ने व्यापार का और भामिनी ने घर का सारा कार्य सम्भाल लिया था । सुघेश की तरह ही भामिनी के जीवन मे भी एक बहुत बडा परिवर्तन आ चुका था । यामिनी के जीवन का गहरा प्रभाव उस पर पडा था । पारिवारिक जीवन सुख के साथ व्यतीत होने लगा था । गहराई से देखा जाय तो यदि, मानव मे स्नेह एव आत्मीयता न हो तो उसके पास क्यो न पूरे विश्व की दौलत भी हो वह शान्ति की प्राप्ति नही कर सकता । जिस परिवार मे धन-सम्पत्ति न हो, किन्तु स्नेह और आत्मीयता हो तो वह परिवार बिना दौलत के भी सुखी रह सकता है ।

जिस परिवार के पास धन-सम्पत्ति भी हो और स्नेह एव आत्मीयता भी पूरी हो तो वह परिवार गृहस्थ जीवन का सुखपूर्वक निर्वहन कर सकता है। यामिनी एव अवघोष की जीवन की स्थिति ऐसी ही थी। उनमे स्नेह एव आत्मीयता की कमी तो पहले भी नही थी किन्तु अब आत्मीयता के साथ धन-सम्पत्ति से भी सम्पन्न बन चुके हैं। इसलिये उनके जीवन-बसत सुखपूर्वक व्यतीत होने लगा।

इसी बीच यामिनी गर्भवती हुई और ठीक सवा नौ मास बाद उसने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया। पुत्रोत्सव मनाया गया और नामकरण के दिन पूरे नगरनिवासियों को आमंत्रित किया गया था। सभी के लिये सुन्दर भोजन व्यवस्था की गई थी। आज उनके भवन मे नगर के सारे ही लोग आ रहे है जा रहे है। विशेष प्रकार की चहल-पहल थी। सुषेण और भामिनी पर ही व्यवस्था का सारा भार था। अत आज वे अत्यन्त व्यस्त नजर आ रहे थे। सुन्दर से सुन्दर व्यवस्था की गई थी। भवन के विशाल हाल मे सभी श्रेष्ठीगण अपने-अपने आसनो पर आसीन है। सामने ही अवघोष और यामिनी बैठे हुए है यामिनी की गोद मे बालक किलकारियां करता हुआ मानो खुशियां मना रहा है। सभी ने बालक के शीतल और तेजस्वी चेहरे को देख कर उज्ज्वल भविष्य की कामना की। कार्यक्रमानुसार उपस्थित नगर के गणमान्य एक-एक व्यक्ति आगे बढे और अवघोष से हाथ मिलाते हुए खुशी से उपहार भेट करने लगे। इस प्रकार एक के बाद एक उपहार आता ही चला गया।

यामिनी ने मन ही मन उन परमत्यागी, निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति के सुरक्षा हेतु महापुरुष को परोक्ष वन्दन किया और निर्णय लिया कि जब भी उन महायोगी का इस नगरी मे पदार्पण होगा, मैं अवश्य ही उन परमपावन महायोगी के दर्शन कर अपने आपको अनन्त ज्योति से ज्योति करनेका प्रयत्न करूगी ।

(१३)

मेदिनीपुर नगर के वाहर आज विशेप प्रकार की भीड़ नजर आ रही थी । नगर के हजारो की सख्या मे लोग वहा उपस्थित हो रहे थे । सभी के चेहरो पर सात्विक आभा छिटक रही थो । क्योकि आज वे किसी मेले या उत्सव मे शामिल होने नही जा रहे थे अपितु सासारिक वन्धनो से मुक्त आत्म-तल्लोन शात क्रान्ति के जन्मदाता परमत्यागी महायोगी के दशन करने के लिए जा रहे थे । मन मे महायोगी के दर्शन की भावना का उभार होने से चेहरे पर भा वैमी ही आकृति का निर्माण हो चुका था । कुछ ही समय मे हजारो की मख्या मे भीड एकत्रित हो गई। महात्यागी महायोगी ने अपनी ध्यान-साधना के पूर्ण होते ही वाहर आकर उपस्थित विशाल जन-मोदिनी को दशन दिये । जिनके दर्शन कर जनता धन्य-धन्य कह उठी । क्योकि उन महायोगी का त्याग-वैराग्य इतना उत्कृष्ट था कि उनके एक--एक नियम का पालन भी गृहस्थ के लिए अत्यन्त कठिन था । गार्हस्थ्य जीवन से महायोगी का साधनामय जीवन अनुस्रोत से ठीक प्रतिस्रातगामी था । दर्शन के वाद जन समूह शाति के साथ विशाल पाडाल मे सभारूप मे वदल गया । महायोगी

ने भौतिकता और आध्यात्मिकता पर गहरा प्रकाश डाला। मानव और मानवता का स्वरूप समझाया। भौतिक संपत्ति को यह बताया है जो आध्यात्मिकता के पीछे-पीछे चलती है। यदि भौतिक संपत्ति को पकडने की कोशिश की गई तो वह भागती ही चली जाएगी और यदि उसकी तरफ पीठ देकर आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिये प्रयत्न किया गया तो भौतिक संपत्ति पीछे-पीछे दौडती चली आएगी। जिसका प्रमाण आज आप, अपने ही नगर के अवधेश और यामिनी को देख रहे है। (सभी सभासदो की दृष्टि एक ही साथ अवधेश और यामिनी के ऊपर जा टिकी। दोनो के मुख पर आज विलक्षण प्रकार की शाति एव सतोष छाया हुआ था) महायोगी का स्वर फूटा-मानव से महामानव बनने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को आत्म-साधना की दिशा मे प्रगति करना चाहिये। क्योंकि यही एक ऐसा पथ है कि जिससे अमरता प्राप्त की जा सकती है।

महायोगी का उपदेश समाप्त होने के बाद अवधेश ने खड़े होकर विनम्रता के साथ मुनिराज के सामने आत्म-निवेदन प्रस्तुत करते हुए कहा—योगीप्रवर! जगल मे देवालय का कपाट तोडते समय मुझे जो अदृश्य रूप से ग्रामदेव की आवाज सुनाई दी। तो भगवन् क्या वह देव उस देवालय की मूर्ति में है? क्या उस मूर्ति से आवाज आ रही थी?

महायोगी ने स्पष्ट किया—अवधेश! ऐसा नहीं होता—देव कभी मूर्ति मे नही रहते। मुख्यतया देव च

प्रकार के होते हैं—१ भवनपति, २. व्यन्तर, ३ ज्योतिष और ४. वैमानिक ।

भवनपति देव तो अधोलोक मे रहते है । व्यन्तर जाति के देवो की उत्पति भी अधोलोक मे ही होती है । किन्तु उनका भ्रमण इस तिर्यक्लोक मे भी होता रहता है । ज्योतिष जाति के देव ये चन्द्र–सूर्य–ग्रह–नक्षत्र-तारा है । जो मेरु पवत का चक्कर लगाते रहते है । वैमानिक जाति के देव इनसे भी ऊपर विमानो मे निवास करते हैं जो कि विशेष ऋद्धि सम्पन्न होते है । यह देवो की सक्षिप्त रूपरेखा है ।

जिस सोमदेव ने तुम्हारी परीक्षा ली और तुम्हे सहायता दी, वह व्यन्तर जाति का देव विशेष है । वह कोई देवालय की मूर्ति मे नही रहता । किन्तु इधर–उधर भ्रमण करता रहता है । तभी तो जिस वृक्ष की छाव मे तुम्हे हरे वृक्ष काटने के त्याग कराए थे उसी वृक्ष पर होने से उसने यह बात सुनली थी और परीक्षा ली थी । यदि वह मूर्ति मे होता तो फिर वहा कैसे आता ?

अवधेश–भगवन्, देव कैसे बना जाता है । महायोगी–अवधेश, तपसयम की आराधना करने से मानव–मानव के साथ आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करने से, पुण्यवानी का अर्जन कर जीव देवलोक मे जा सकता है । अवधेश—भगवन्, क्या जीव देवलोक मे जाने के बाद सदा के लिये वही रहता है । महायोगी—अवधेश ! ऐसा नही होता । जीव पुण्यवानी अर्जन कर देवलोक मे जाता है और आयुष्य समाप्त होने के बाद निश्चित रूप से वहा से चलकर अवश्य

आज उनके जीवन मे एक विशिष्ट प्रकार का मोड आ चुका था। जीवन की दिशा ही बदल गई थी क्योकि वे मानव से महामानव बनने जा रहे थे।